हमारे पर्व और त्यौहार

(सामाजिक प्रतिवेशो द्वारा समवायी ज्ञान)

चौ० हरिहर सिंह एम० ए०, बी० टी० (बनारस)
बी० टी० (सेवाग्राम) एम० टी० (डेनमार्क)



सन्मार्ग प्रकाशन - दिल्ली

प्रथम संस्करण 1965

प्रकाशक सन्मार्ग प्रकाशन १६ यू० बी०
बंगलो रोड दिल्ली ७

मूल्य सात रुपये पचास पैसे

मुद्रक कमल प्रेस पटना ४

दो शब्द

आज का मानव चाँद एवं अन्य ग्रहों पर पहुँचने की कल्पना को चरितार्थ करने के लिए प्रयत्नशील है। उसने अपने मस्तिष्क का इतना विकास कर लिया है कि चाँद पर पहुँचना अब कुछ वर्षों की ही बात रह गयी है। लेकिन मानवता को जीवित रखने के लिए मस्तिष्क के साथ साथ हृदय का भी समुचित विकास आवश्यक है।

जहाँ मनुष्य का मस्तिष्क इतना विकसित हुआ है हृदय संकुचित होता जा रहा है। आज के तथाकथित शिक्षित मनुष्य की अपेक्षा तथाकथित अपढ़ का हृदय अधिक विकसित है। उसमें सरलता, करुणा, अतिथि सेवा एवं परोपकार की भावना पढ़े लिखे की अपेक्षा अधिक है।

विद्यालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे बच्चों के समुचित विकास की ओर ध्यान दें। बच्चों के मस्तिष्क के विकास के अनेक साधन वहाँ उपलब्ध हैं। उनके शरीर के विकास के लिए भी व्यायाम एवं खेल कूद का प्रबन्ध रहता है परन्तु उनको मनुष्य बनाने वाले हृदय के विकास का साधन स्कूलों में पर्याप्त मात्रा में नहीं देखा जाता।

मनुष्य के हृदय के विकास के लिये समाज सेवा, ईश्वर समर्पण तथा साहित्य और संगीत आदि कलाओं की उपासना और अभ्यास एक मात्र साधन है। मैंने देखा है कि विद्यालयों में महापुरुषों की जयन्तियाँ और पर्व त्योहार मनाये जाते हैं पर इस तरह नहीं मनाये जाते जिससे बच्चों का विकास हो। इन पर्व त्योहारों के दिन विद्यालय बन्द कर दिया जाता है और समझ लिया जाता है कि हमने पर्व त्योहार मना लिये।

जयन्ती और पर्व त्योहार तो एक साधन हैं जिन अवसरों पर हम पीछे घूम कर देखते हैं और आगे बढ़ने के लिये मार्ग निर्धारण करते हैं। जयन्ती के द्वारा हम महापुरुषों के आदर्श जीवनी से प्रेरणा ग्रहण कर अपने जीवन को उन्नत बनाते हैं। इस प्रकार त्योहार से भी अनेकों शिक्षा ग्रहण करते हैं और समाज में अपना सम्पर्क स्थापित कर समाज की कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं और अपना परिमार्जन भी करते हैं। यदि ऐसा कर सकते हैं तो हम यह कह सकते हैं कि हमने अपने विद्यालयों में समुचित ढंग से पर्व त्योहार मनाया।

बुनियादी विद्यालयों में ज्ञान के तीन साधन हैं। समाज, प्रकृति और उद्योग। यदि सूक्ष्म रूप में कहा जाय तो ज्ञान का मुख्य साधन समाज ही है। प्रकृति और उद्योग का इसमें समावेश हो सकता है और स्वाभाविक कहना पड़ता है कि बुनियादी शिक्षा

समाज के द्वारा, समाज के लिये समाज को दी जाती है। समाज में हम को जीना और समाज में ही मरना है। समाज से बाहर रह कर मनुष्य देवता बन जाय तो बन जाय पर मनुष्य नहीं बन सकता। आजकल भारत का समाज अस्त व्यस्त अवस्था में है। भारत में समाज एवं व्यक्ति को अलग अलग दृष्टिकोण से देखा जाता है फलस्वरूप क्षेत्र विशेष में व्यक्ति विशेष तो इतना आगे बढ़ जाता है कि वह संसार का अद्वितीय महापुरुष माना जाता है लेकिन वह समाज को अपने साथ खींच नहीं सकता। समाज जहां का तहां रह जाता है। इस कमी को दूर करने के लिये समुचित ज्ञान देने की व्यवस्था विद्यालयों में होनी चाहिये ताकि नये समाज का निर्माण हो सके।

इसीलिये इस पुस्तक की रचना की गई। इस पुस्तक में समाज में मनाये जाने वाले पर्व और त्योहारों को स्कूलों में मनाये जाने का ढंग बतलाया गया है। मैं समझता हूं कि शिक्षक यदि इसमें उल्लिखित ढंग से नये समाज की रचना का दृष्टिकोण में रखते हुए समाज से सम्पर्क स्थापित करें तो इन पर्व त्योहारों से बच्चों का समुचित विकास होगा और तब जाति लिंग रंग धर्म और भूगोल की दिवारें ढहेंगी और मनुष्य, मनुष्य बनेगा। इस उपदेश को लेकर इस पुस्तक की रचना की गई है।

आशा है इससे वांछित फल मिलेगा।

(चौधरी हरिहर सिंह)
जिला शिक्षा पदाधिकारी
स ह र सा

विषय-सूची

*

क्रम संख्या | पृष्ठ संख्या

प्रथम परिच्छेद

बुनियादी तालीम और मुक्ति

"सा विद्या या विमुक्तये"

हमारे ऋषियों का यह उद्घोष है 'विद्या वही है जिससे हम मुक्ति प्राप्त होता है'। हमारे यहाँ विद्या की एक प्राचीन परम्परा थी और थी उसकी एक अपनी विशेषता। हम उस विद्या मानते ही न थे जिससे हम मुक्ति न मिले। हमारे सारे कार्य-कलाप इसीलिये होते थे कि हम मुक्ति मिले।

मनुष्य परमात्मा का एक अंश है और परमात्मा में मिल जाना ही इसकी मुक्ति है। जीवन मरण के बन्धनों से छूट जाने को ही मुक्ति कहते हैं। परन्तु मुक्ति का यह संकुचित अर्थ हुआ या अन्तिम अर्थ हुआ। इस मुक्ति तक पहुँचने के लिये अनेक प्रकार के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करनी होगी। तब अन्त में आवागमन की मुक्ति स्वाभाविक और सरल हो जायगी। अब प्रश्न यह है कि विद्या द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये और उसमें नई तालीम कहाँ तक सहयोग देगी।

आज हम चारों ओर से अनेक प्रकार के बन्धनों में जकड़े हुए हैं। अर्थ का बन्धन है, शासन का बन्धन है, समाज का बन्धन है, धर्म का बन्धन है, माया ममता और मोह का बन्धन है और अन्त में है इस शरीर का बन्धन। सबसे पहले हम शरीर को इन बन्धनों से मुक्त करना है और तब आत्मा को मुक्त करके किन्हीं अवस्था में पहुँचना है।

अर्थ का बन्धन पहला बन्धन है और परावलम्बन इसकी पहली सीढ़ी और स्वावलम्बन प्रकाश द्वार है। नई तालीम में हम कर्म को स्थान देते हैं। हम कहते हैं कि किसी उत्पादक कर्म के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होना चाहिये। कर्म से अलग हम ज्ञान का अस्तित्व नहीं मानते परन्तु इसी कर्म और ज्ञान के मध्य में आर्थिक स्वावलम्बन का रहस्य छिपा हुआ है। अब लीजिये हमने कर्म किया, उससे कुछ उत्पन्न हुआ और उसका हमने उपयोग किया। इस प्रकार अर्थ-तत्त्व का बन्धन टूट गया और हम मुक्त हो गये। यह एक एकांगी मुक्ति हुई।

का बोझ तो बढता है किन्तु मुक्ति किसी प्रकार की नही है प्रत्युत बन्धन ही बनता जाता है। कोरे मस्तिष्क का विकास मनुष्य को शैतान बना देता है और शोषक बनाता है। कोरे हृदय का विकास मनुष्य को अकर्मण्य और नपुंसक बना देता है और कोरे शरीर का विकास मनुष्य को बल बनाता है। इस प्रकार अंग्रेजो द्वारा चलाई गई शिक्षा पद्धति मनुष्य को शैतान और शोषक बनाती है। किन्तु यूरोप मे चलने वाली शिक्षा पद्धति म शरीर और मस्तिष्क दोनो का विकास होता है और मनुष्य मनुष्य न रहकर मशीन हो जाता है। इसलिए नई तालीम म समाज सेवा लोक सेवा तथा स्वस्थ विनोद को स्थान देकर हृदय के विकास के लिए भी पर्याप्त स्थान रखा है।

रावण बुद्धिमान था। कहा जाता है कि उसके पास दस व्यक्तियो की बुद्धि और पराक्रम था। किन्तु लोक संग्रह की शक्ति तो राम म ही आई, जिन्होने पत्थर को भी छूकर नारी बना दिया। बन्दरो को देवता बना दिया और इस प्रकार एक सिर और दो भुजाओ वाला राम रावण से श्रेष्ठ हो गया।

हम राम राज्य लाना है और इस गणतन्त्र को रामतन्त्र बनाना है। इसके लिए हमे सर्वप्रथम राम बनना होगा। और इसके लिए नई तालीम ही सिद्ध वाहन बन सकती है। पूर्णता की प्राप्ति करनी ही तो मुक्ति है। पूर्ण म पूर्ण का मिल जाना ही तो मुक्ति है। लोक संग्रह की भावना को रख करके सारी शक्तियो का विकास करना ही तो मुक्ति है और राम भगवान बन गये लोक संग्रह का विकास करके ही। यह देश सच्चे अर्थ म देवताओ का देश हो जायगा यदि हम नई तालीम के संबल पर चलते हुए मुक्ति की ओर अग्रसर हो।

काम के एक और पहलू को हम लेते है क्योंकि काम सत है। उसके बाद चित है और तब आनन्द आता है। शास्त्रो म कहा गया है कि चित वृत्तियो का निरोध करना ही योग है। उसके लिए बहुत-से रास्ते बनाये गये हैं। यम और नियमो की चर्चा की गई है। जो साधारण मनुष्य के लिए सर्वथा असम्भव है। चित वृत्तियो का निरोध करके हम योगी बनना है। यम और नियमो का अनुसरण करके चित्तवृत्तियो का निरोध करने म हम डरते हैं। अब प्रश्न यह है कि हम योगी क्यो बनें क्योंकि बिना योगी बने हम आवागमन के बन्धन से मुक्त नही हो सकते। चित्तवृत्तियो का निरोध करना ध्यान को एकाग्र करने का एक मार्ग बतलाया गया है। यम

और नियमों से ध्यान का एकाग्रीकरण होता है। परन्तु वह हमसे होगा नहीं क्योंकि हम दुर्बल हैं और हैं सांसारिक। कबीर ने रास्ता बतलाया प्रेम का। प्रेम के द्वारा भी ध्यान एकाग्र हो सकता है। परन्तु हममें वह भी शक्ति नहीं है कि हम प्रेम करें। संसार की ज्वाला, भूख की ज्वाला और माया-ममता की ज्वाला से हमारा प्रेम टिकता नहीं है और प्रेम की धार पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान है। बड़ी समस्या है योगी बनने की कोरी महत्वाकांक्षा है परन्तु सामने भयंकर बाधायें और भीतर भयंकर दुर्बलताएं मार्ग विरोध करती हैं। अब बतलायें कि हम योगी कैसे बनें और मुक्ति कैसे प्राप्त करें। नई तालीम हमारी सहायिका के रूप में आती है। वह कहती है कि लोक कल्याण की भावना से काम करने पर, उद्योग करने पर, सेवा करने पर और प्रयास करने पर अपने आप चित्तवृत्तियों का निरोध होता है और मन एकाग्र हो जाता है। भगवान ने भी तो कहा है—"योग: कर्मसु कौशलम्।" हमने कर्म किया। उसमें हमने ज्ञान प्राप्त किया और हो गये इस प्रकार हम बिना प्रयास के योगी। क्या है इससे भी बढ़कर सरल मार्ग मुक्ति का, विदेह होने का और योगी बनने का?

एक बात और। योग का अर्थ होता है जोड़ना और जोड़ने वाले को कहते हैं योगी। तो कर्म और ज्ञान का जो समन्वय कर इन दोनों को जोड़े वही तो हुआ योगी, और इस प्रकार के योग की साधना करने वाले को ही प्राप्त होती है भौतिक तथा आध्यात्मिक मुक्ति।

ऊपर मैंने लिखा है कि मुक्ति प्राप्त करना ही शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य है और इसके लिये साधन बतलाया है सच्चिदानन्द का दर्शन। यदि इसे इस तरह से कहें तो और स्पष्ट होगा कि सच्चिदानन्द का दर्शन करना और मुक्ति प्राप्त करना दोनों एक ही वस्तु है। और इसके लिये साधन है लोक-कल्याण की भावना से ज्ञानपूर्वक उत्पादक काम करना। अब हम यहीं पर एक बात और समझ लेनी चाहिये कि जैसे—सत् चित् और आनन्द तीनों का समन्वित रूप ही सच्चिदानन्द कहलाता है उसी प्रकार बाहु हृदय और मस्तिष्क तीनों के समन्वित रूप को ही मनुष्य कहते हैं। जिस प्रकार मनुष्य के किसी एक अंग को मनुष्य नहीं कहेंगे। उसी प्रकार सच्चिदानन्द के किसी रूप को सच्चिदानन्द नहीं कहेंगे। जिस प्रकार सत्-चित और आनन्द के समन्वित कल्पना को ही सच्चिदानन्द कहते हैं उसी प्रकार काम ज्ञान और आनन्द के समन्वित रूप को ही काम कहते हैं। जिस प्रकार मनुष्य का विभा-

जन नही हो सकता, उसी प्रकार हम ऐसे काम की परिकल्पना भी नही कर सकते जिसम केवल आनन्द ही हो, या केवल ज्ञान ही हो या केवल काम ही हो। हम बुनियादी शिक्षा म उस तरह के काम की कल्पना करते है जिस काम म ज्ञान और आनन्द का अन्योन्याश्रय तथा नित्य सम्बन्ध हो। और उस प्रकार के काम मे ही हम मुक्ति मिलेगी।

एक बात और देखिय। सच्चिदानन्द का नाम ही बतला रहा है कि प्राथमिकता किस मिलनी चाहिय और पृष्ठभूमि क्या है। सत चित और आनन्द म सवप्रथम सत है और तब चित है और उसके उपरान्त आनन्द है। सत का अथ मन काम बतलाया है और उस तरह का काम बतलाया है जिससे क्षुधा की तृप्ति हो, शरीर की भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो तथा लोक का कल्याण हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि काम की पृष्ठ भूमि पर ज्ञान का ताना-बाना बुना जा सकता है और तब सात्विक आनन्द की अठखेलियाँ अगडाई लेंगी। यही है बुनियादी शिक्षा और यही है शिक्षा की बुनियाद।

द्वितीय परिच्छेद

बुनियादी शिक्षा में समवाय

प्रचलित शिक्षा में इतिहास, भूगोल तथा भाषा पढ़ाने की अनेक कलाएँ निकली हैं, जिनके सहारे विद्यार्थियों के मस्तिष्क में इन विषयों की विभिन्न सूचनाएँ भरी जाती हैं। सूचनाएँ "ज्ञान" नहीं हैं क्योंकि वे अनुभव पर बिल्कुल आधारित नहीं हैं। ऐसी सूचनाएँ बोझ मात्र हैं। पर बुनियादी शिक्षा ज्ञान प्राप्ति का आधार 'काम' को मानती है एवं 'काम' द्वारा प्राप्त ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। तो जिस ढंग का अवलम्बन ग्रहण कर ज्ञान प्राप्त हो वह समवाय पद्धति है और जिससे सूचनाएँ प्राप्त हों वह सूचना संग्रह पद्धति ही कही जा सकती है।

समवाय हमारी एक पुरानी पद्धति है। इसके लिये हिन्दी में कोई दूसरा शब्द नहीं और अंग्रेजी में तो बिलकुल ही कोई दूसरा शब्द नहीं है। परन्तु हम अंग्रेजी के कोरिलेशन (correlation) शब्द से समवाय का अर्थ निकालते हैं जो बिलकुल गलत है। कोरिलेशन से दो वस्तुओं का सम्बन्ध तो जुटता है किन्तु दोनों का अलग-अलग अस्तित्व भी रहता है। परन्तु समवाय में कर्म और ज्ञान का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। एक के अभाव में दूसरे का अभाव निश्चित है, एक की कल्पना किए बिना दूसरे की कल्पना की ही नहीं जा सकती। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू कहे जाते हैं और इसी को समवाय कहते हैं। इसे मैं और स्पष्ट करता हूँ। माँ-बाप का सम्बन्ध कोरिलेशन कहा जायगा, भाई-भाई का सम्बन्ध कोरिलेशन कहा जायगा। उनमें दोनों का अलग-अलग अस्तित्व रहते हुए भी एक दूसरे का सह-सम्बन्ध कहा जा सकता है। हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं। रेल की दो समानान्तर लाइनों का (correlation) है। वे एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। एक के अभाव में दूसरी व्यर्थ है। परन्तु एक के अभाव में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती ऐसी बात नहीं है। दोनों दो स्वतन्त्र वस्तुएँ हैं दोनों को मिलाकर एक उपयोग हो रहा है यह ठीक है परन्तु दोनों मिल कर एक वस्तु हो गई, उनका रूप परिवर्तित हो गया और उनकी संज्ञा, वचन तथा लिंग में भी परिवर्तन हो गया ऐसी बात नहीं। इस प्रकार जहाँ दो वस्तुएँ इस प्रकार मिल जावें कि उनकी संज्ञा, वचन और लिंग में भी परिवर्तन हो जाय तथा

उनकी उपयोगिता भी बदल जाय वही समवाय प्रारम्भ होगा। समवाय तो शास्त्रीय शब्द है। घडा और मिट्टी में जो सम्बन्ध है, सूत और वस्त्र में जो सम्बन्ध है, और छुरी तथा छुरी के बेंट मे जो सम्बन्ध है उसी को समवाय कह सकते हैं। चाकू मे लकडी लगी है। कोई कहे कि यह चाकू नही है, लकडी है तो क्या दूर पडी हुई लकडी से काम किया जा सकता है, नही। यदि उसे लकडी न कह करके केवल चाकू कहते है और उसमे से हम लकडी निकाल लेते है तो क्या वह चाकू का काम करेगा नही। स्पष्ट है कि एक की कल्पना दूसरे के अभाव में की नही जा सकती और उसे ही समवायी सम्बन्ध कहते है। इस और भी स्पष्ट करना चाहे तो इस तरह करेंगे। यूरोप के ज्ञान और काम की पद्धति कोरिलेशन की पद्धति कही जा सकती है। काम का अलग अस्तित्व है ज्ञान का अलग अस्तित्व है। लडके कुछ ज्ञान प्राप्त करते है और कुछ काम भी कर लेते हैं। परन्तु वे इस सिद्धान्त के कायल नही है कि काम द्वारा ज्ञान हो। इसलिये उनकी पद्धति कारेलेशन की पद्धति कही जायगी और हमारे काम द्वारा ज्ञान की पद्धति समवाय की पद्धति कही जायगी। वे काम के महत्त्व को तो मानते हैं परन्तु वे इसके कायल नही हैं कि काम का सम्बन्ध वास्तविक जीवन से हो और काम उत्पादक हो। इसलिए उनके काम और ज्ञान की पद्धति वाली शिक्षा से जीवन की शिक्षा नहीं प्राप्त हो सकती जब कि हमारे यहाँ उत्पादक कार्यों द्वारा जीवन की शिक्षा मिलती है। और जो वास्तविक शिक्षा है। इसीलिये हमारी समवाय पद्धति मे जीवनोपयोगी उत्पादक कामो के द्वारा जीवनोपयोगी शिक्षा दी जाती है। जो स्वावलम्बी नागरिको को पैदा करती है।

समवाय शब्द मे दो शब्द हैं—सम और वाय। दोनो शब्दो का अपना अपना विशेष अर्थ है। जिस प्रकार मोटर में दो शक्तियाँ होती हैं एक गति देती है और दूसरी दिशा बतलाती है उसी प्रकार समवाय शब्द मे दो शक्तियाँ हैं। वाय से गति प्राप्त होती है और सम से दिशा।

कोई काम है उससे ज्ञान प्राप्त होना है। काम किया था उससे अनुभव प्राप्त हुआ उस अनुभव के आधार पर फिर काम किया और उससे कुछ और अनुभव प्राप्त हुआ। न काम का अजाण होता है न अनुभव का। आवश्यकता के अनुसार काम करते हैं और काम के अनुसार ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसी को समवाय कहते हैं।

--आजकल एक बड़ी भूल हो गई है। भूल यह है कि इतिहास, भूगोल आदि विषयों को हम विषय न समझकर एतद सम्बन्धी ज्ञान की सूचनाएँ देने लगे हैं। और फिर इनकी ज्ञान प्राप्ति के लिये काम का आयोजन करते हैं। यह ज्ञान प्राप्ति का बिलकुल ही गलत ढंग है। दुःख तो उस समय होता है जब बड़े बड़े विद्वानों को भी समवाय को और इसी दृष्टि से देखते हुये पाते हैं। अभी थोड़े ही दिन हुआ जब बिहार के एक विशिष्ठ विद्वान तथा एक विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने यह प्रश्न किया कि भूगोल पढ़ाना है आप किस प्रकार काम करके समवाय द्वारा भूगोल पढ़ायेंगे। मैंने उत्तर दिया कि मुझे भूगोल नहीं पढ़ाना है, मुझे काम करना है और काम करते और कराते उस समय यदि विद्यार्थियों के मस्तिष्क में जिज्ञासा उत्पन्न हो गई तो उन्हें गणित इतिहास, भूगोल तथा साहित्य की सूचनायें दे सकते हैं। ये सूचनायें अनुभव आधारित होने के कारण ज्ञान की सत्ता में भी पुकारी जा सकती हैं।

समवायी पद्धति द्वारा दिये गये ज्ञान में इतिहास भूगोल तथा दर्शन के नाम से ज्ञान को पृथक करनेवाली रेखाएँ नहीं खींची जा सकतीं प्रत्युत ज्ञान समग्र ज्ञान के रूप में लिया जाता है और रुचि और परिस्थिति के अनुसार विद्यार्थी उस ज्ञान का सम्बद्ध न स्वाध्याय, अनुभव सत्संग पर्यटन और जन-सम्पर्क द्वारा विशेष रूप से कर सकता है।

समवायी ज्ञान के हमारे तीन साधन हैं—प्रकृति, समाज तथा उद्योग। हमारे यहाँ तीनों के लिये विशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है। हमारे देश की तरह छः ऋतुयें और बारह महीने संसार के किसी भी स्थान में नहीं पाये जाते। हमारे देश की तरह घटाटोप अन्धकार से घिरे हुये दिन तथा दुग्ध धवल रात्रि संसार के किसी भी देश में नहीं पाये जाते। आकाश से बातें करनेवाले पहाड़, घन अन्धकार पूर्ण जंगल तथा पाताल की थाह लेनेवाले गर्त हमारे देश में हैं। भयंकर आंधीवाले स्थान खिलखिलाती धूपवाले स्थान तथा सदा वर्षा की बहार उठानेवाले स्थान हमारे देश में हैं। प्रकृति के इतने विभिन्न रूप हम शिक्षा देने के लिये प्रस्तुत हैं।

समाज के पर्व-त्योहार समाज के रीति रिवाज समाज के अभ्यास और आदर्श, समाज के दुःख और सुख, समाज की शान्ती और सभा समाज में ऊँच-नीच तथा समाज की नित्य होनेवाले परिवर्तन हमारे निमित्त हैं।

जीवन-यापन तथा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अनेक प्रकार के काम और धन्धे हमारे निमित्त हैं।

। -समवाय के पहले पहलू का निश्चय करते हुये कार्यकर्ता स्थान तथा समय की परिस्थिति का ध्यान रखना पडेगा। कार्यकर्ता की परिस्थिति तथा स्थान और इन दोनो परिस्थितियो के साथ-ही-साथ कार्यकर्ता की मानस की परिस्थिति का भी ज्ञान रखना चाहिये। शिक्षक तथा शिक्षार्थी के सामने काम का उद्देश्य स्पष्ट रखना चाहिये। उद्देश्य मे आर्थिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक के अतिरिक्त भौतिक उद्देश्य रखना चाहिये। जैसे कपडा बना रहे है तो पहनने के लिये। अपने पहनने के लिये, अपने परिवार के पहनने के लिये तथा अपने साथ वालो के पहनने के लिये। काम करते समय ही यदि विद्यार्थी के मस्तिष्क मे जिज्ञासा उत्पन्न हो, और अवश्य होगी तो शिक्षक का काम उस ज्ञान पिपासा को केवल तृप्त करना ही नही है प्रत्युत तीव्र भी करना है। इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त होगा वही वास्तविक समवायी ज्ञान कहा जायगा और इस प्रकार जो काम होगा वही समवायी काम कहा जायगा। समवायी पद्धति द्वारा ज्ञान दिये जाने वाले पद्धति मे शिक्षक का स्थान मार्ग प्रदर्शक के अतिरिक्त और कुछ नही रह जाता। वह विद्यार्थियो के साथ साथ रहकर परोक्षरूप से जिज्ञासा का उद्दीपन करता रहेगा। और यथाशक्ति उसकी तृप्ति करते हुये विद्यार्थियो मे नवीन की जिज्ञासा उत्पन्न करेगा। जिससे वे स्वाध्याय और स्वप्रयत्न द्वारा ज्ञान दीपक को और अधिक प्रज्वलित करेंगे। शिक्षक सदा यह देखेगा कि विद्यार्थी के हृदय मे उत्पन्न प्रदीप्त ज्ञान-दीपक अनायास अनाध्याय, अक्रम दुष्क्रम विषय वमार, आलस्य दम्भ और अनिच्छा द्वारा बुझ न जाय। शिक्षक की सतत जागरकता के पहरे मे विद्यार्थी कर्म करेगा और ज्ञान प्राप्त करेगा सेवा करेगा और ज्ञान प्राप्त करेगा चिन्तन, अभ्यास और अनुभव द्वारा उसे पक्का करेगा और उसे ही समवायी ज्ञान कहा जायगा।

-आजकल एक बड़ी भूल हो गई है। भूल यह है कि इतिहास, भूगोल आदि विषयों को हम विषय न समझकर एतद सम्बन्धी ज्ञान की सूचनाएँ देने लगे हैं। और फिर इसकी ज्ञान प्राप्ति के लिये काम का आयोजन करते हैं। यह ज्ञान प्राप्ति का बिलकुल ही गलत ढंग है। दुःख तो उस समय होता है जब बड़े बड़े विद्वानों को भी समवाय को और इसी दृष्टि से देखते हुए पाते हैं। अभी थोड़े ही दिन हुआ जब बिहार के एक विशिष्ठ विद्वान तथा एक विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने यह प्रश्न किया कि भूगोल पढ़ाना है आप किस प्रकार काम करके समवाय द्वारा भूगोल पढ़ायेंगे। मैंने उत्तर दिया कि मुझे भूगोल नहीं पढ़ाना है, मुझे काम करना है और काम करते और कराते उस समय यदि विद्यार्थियों के मस्तिष्क में जिज्ञासा उत्पन्न हो गई तो उन्हें गणित इतिहास, भूगोल तथा साहित्य की सूचनायें दे सकते हैं। ये सूचनायें अनुभव आधारित होने के कारण ज्ञान की संज्ञा में भी पुकारी जा सकती है।

समवायी पद्धति द्वारा दिये गये ज्ञान में इतिहास, भूगोल तथा दर्शन के नाम से ज्ञान को पृथक करनेवाली रेखाएँ नहीं खींची जा सकती प्रत्युत ज्ञान समग्र ज्ञान के रूप में दिया जाता है और रुचि और परिस्थिति के अनुसार विद्यार्थी उस ज्ञान का सम्वर्द्धन स्वाध्याय, अनुभव, सत्संग पर्यटन और जन-सम्पर्क द्वारा विशेष रूप से कर सकता है।

समवायी ज्ञान के हमारे तीन साधन हैं—प्रकृति, समाज तथा उद्योग। हमारे यहाँ तीनों के लिये विस्तार क्षेत्र पड़ा हुआ है। हमारे देश की तरह छः ऋतुएँ और बारह महीने संसार के किसी भी देश में नहीं पाये जाते। हमारे देश की तरह घनाटोप अन्धकार में घिरे हुए दिन तथा दुग्ध धवल रात्रि संसार के किसी भी देश में नहीं पाये जाते। आकाश में बातें करनेवाले पहाड़, घन अन्धकार पूर्ण जंगल तथा पाताल की थाह लेनेवाले खान हमारे देश में हैं। भयंकर जाड़ेवाले स्थान, चिलचिलाती धूपवाले स्थान तथा सदा वर्षा की बहार उठानेवाले स्थान हमारे देश में हैं। प्रकृति के इतने विभिन्न रूप हम शिक्षा देने के लिये प्रस्तुत हैं।

समाज के पर्व-त्योहार समाज के रीति रिवाज, समाज के अन्धविश्वास और आदतें, समाज के दुःख और सुख, समाज की शादी और गमी समाज में ऊँच नीच तथा समाज की नित्य होनेवाले परिवर्तन हमारे शिक्षक हैं।

जीवन-यापन तथा भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अनेक प्रकार के काम और धन्धे हमारे शिक्षक हैं।

ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिज्ञासा होनी चाहिये। और यदि हम जिज्ञासु होकर क्यों, कब, कैसे और किस तरह के प्रश्नों के साथ आँख खोलकर चलते हैं तो हमें ज्ञान की बिखरी हुई राशि मिलती है। हम अपनी रुचि के अनुसार उन रत्नों का चयन करते हैं और इस प्रकार अपने जीवन को सबल बनाते हैं। यही है समवायी ज्ञान।

ऊपर मैंने लिखा है कि अनुभव को ही ज्ञान कहते हैं। काम करते हैं, सीखते हैं। काम करना सीखते हैं यह भी एक अनुभव अर्थात् ज्ञान हुआ। काम करने में भूलें हुई यह भी ज्ञान हुआ और अनुभव हुआ और उस काम से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य बातों को भी सीखते हैं और उनका अनुभव करते हैं। दूसरी ओर हम इतिहास पढ़ते हैं या भूगोल पढ़ते हैं। उस इतिहास से हम अकबर के कर्म कलापों से परिचय प्राप्त करते हैं। यदि अकबर के कर्म कलापों को पढ़कर अपने कर्म-कलापों का सुधार नहीं कर सके अकबर के भ्रमों से अपने भ्रमों का निवारण नहीं कर सके तो अकबर के सात पुश्त का नाम रटने से क्या लाभ जबकि हम अपने ही पितामह और प्रपितामह का नाम नहीं जानते। और इस प्रकार मस्तिष्क को कूड़ाखाना बनाने से मनुष्य का निर्माण कुण्ठित हो जाता है। हमने पढ़ लिया है कि भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय है। परन्तु हम पता नहीं कि हमारे गाँव के उत्तर में क्या है। तो ऐसी अवस्था में उत्तर में हिमालय के होने का ज्ञान आवश्यकता से सम्बद्ध न होने के कारण सड़ा हुआ ज्ञान क्या न कहा जायगा। हम दर्शन शास्त्र के विद्वान हैं किन्तु ईश्वर के प्रति भक्ति नहीं हम डाक्टर और वैद्य हैं, स्वास्थ्य के पंडित हैं परन्तु बीड़ी और सिगरेट का सेवन करते हैं और रात्रि में जगकर सूर्योदय तक सोते रहते हैं तो हमारे स्वास्थ्य का ज्ञान एक विडम्बना मात्र क्या न कहा जायगा। हम स्वास्थ्य की परीक्षा में १०० नम्बर लाते हैं किन्तु दातुन करने का अभ्यास नहीं है तो स्वास्थ्य की परीक्षा में पास करना क्यों न हास्यास्पद समझा जायगा। ऊपर लिखी ये सारी विडम्बनायें जो अपने आप में सत्य हैं समवाय पद्धति द्वारा दिये गये शिक्षण तथा अनुभव में असम्भव हैं।

संसार में सबसे पहले क्रान्तिकारी रूसो से आवाज उठायी—करो और सीखो। इस विचार का प्रचार हुआ। ड्यूवी ने इस पर महल खड़ा किया। माटेसरी, किंडरगार्टन, प्रोजेक्ट मेथड और डाल्टन प्लेन आदि की पद्धतियाँ करो और सीखो के आधार पर ही विनिर्मित की गई। रूसो के शिष्य की अंगुली जल गई परन्तु उसने कहा—रोको मत जलने दो। उससे वह सीखेगा।

और इस जलन में सीखनेवाले अनेक पैदा हुए। परन्तु इतिहास और भूगोल की पढ़ाई वैसे ही चलता रहा। गांधी आया। उसने कहा कि करो और सीखो की पद्धति तो ठीक है परन्तु निरर्थक कर्म से निरर्थक ज्ञान की प्राप्ति होने की सम्भावना है और साथ ही उसने यह भी कहा कि विद्यार्थी समाज का प्राणी है उस समाज में किये जानेवाले कामों से सीखना है और साथ ही उसने यह भी कहा कि उत्पादक कामों द्वारा उत्पादक अनुभव प्राप्त करते हुए भोग्य वस्तुओं का उत्पादन करके स्वयं भोगना और समाज को भोगने देना ही वास्तविक कर्म और गीता के सिद्धान्त की शिक्षा होगा। और इस प्रकार उसके हृदय का विकास होगा और वह पूर्ण होगा। यही तो समवायी ज्ञान है।

सत्यकाम आता है गुरु-आश्रम में और कहता है महाराज? मुझे ब्रह्म विद्या दीजिये। गुरु उसे एक हजार गायें देता है और कहता है इसे चार हजार करके आना। आजकल तो हम इसे कहेंगे 'आया था हरि भजन को ओटन लगा कपास'। आया था बिचारा ब्रह्म विद्या प्राप्त करने के लिये और चराने लगा गाय। परन्तु श्रद्धा पूर्वक उसने एक हजार गायों की सेवा की और सेवा करते तथा काम करते हुए उसने अनुभव प्राप्त किया और उस अनुभव के बल पर उसने ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया। गुरु ने देखा उसके चेहरे पर दिव्य तेज है। गुरु ने कहा—क्या ब्रह्म ज्ञान मिल गया? उसने कहा—हाँ गुरु और शिष्य दोनों सन्तुष्ट हो गये। ऐसे ही ज्ञान का समवाय पद्धति कहते हैं। भगवान ने भी तो कहा है—

श्रद्धावान लभते ज्ञानम् या 'विश्वासम् फल दायकम्'।

एक गदहा है। उसके पीठ पर ज्ञान और विज्ञान की पुस्तकों का बोझ लदा है। गधे को उन पुस्तकों के उपयोग का अनुभव नहीं प्राप्त है। उन पुस्तकों में वर्णित विद्याओं का वह ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता है। यही अवस्था उस मनुष्य की है जिसके मस्तिष्क में तोता रटन्त विद्याओं का बोझ पड़ा हुआ है और जो परीक्षाओं में परीक्षा पुस्तक के पन्नों पर उगल देने के लिये है। उसके मस्तिष्क की विद्याओं का उपयोग उसके लिए उतना ही है जितना गदहे की पीठ पर रखी हुई पुस्तकों का उपयोग गधे के लिये है। एक मुंशीजी थे। बहुत बड़े विद्वान थे। गणित के आचार्य थे। वे एक नदी के किनारे गये थे। उनके साथ उनका दस वर्ष का बच्चा भी था। उन्होंने नदी के तट पर जाकर सोचना प्रारम्भ किया कि नदी में कितना पानी है। यदि नदी के पानी की गहराई लड़के की ऊँचाई से अधिक होगी तो लड़के को

पार करने की दूसरी व्यवस्था करनी होगी। उन्होने पानी का नापा और उसका औसत निकाला और उस औसत से सिद्ध हुआ कि पानी उस लडके के कमर के बराबर है। उन्होने लडके को पार करने की आजादी दी और कहा कोई हानि नही। गणित असत्य नहीं हो सकता। लडका नदी पार करने लगा और बीच मे जाकर डूब गया। क्योकि, बीच म पानी अधिक था और तट पर कम जिसका औसत लडके के कमर के बराबर था। मुशीजी ने सर पर हाथ रख कर 'कहा—लेखा जोखा थाहे लडका डूबा काहे। समवायी ज्ञान के अभाव म मुशीजी का सारा ज्ञान व्यर्थ हुआ और उन्हे लडके से भी हाथ धोना पडा।

पचतन्त्र की प्रसिद्ध कहानी-पुस्तक मे भी व्यवहारहीन परतु प्रवीण पण्डितो की कथाए आई है। जिनसे यही सिद्ध होता है कि कर्म के बिना ज्ञान व्यर्थ है। और कई अशो म वह हानिकर सिद्ध होता है।

प्राचीन काल म हमारे यहाँ आश्रमो की स्थापना होती थी। विद्यार्थी गुरुकुल म जाकर गुरु के परिवार म सम्मिलित होता था। वहाँ राज परिवार के बालक तथा भिक्षुक के बालक म कोई अतर नहा रहता था। वहाँ श्री कृष्ण और सुदामा दोनो लकडी काटते थे। घोर शारीरिक श्रम करके गुरु परिवार का पालन पोषण करते थे और अपने शरीर का भी सगठन करते थे। यहाँ कर्म प्रधानता रहती थी और श्रम के माध्यम से ही चरित्र तथा हृदय की उन्नति की जाती थी और किया जाता था मस्तिष्क का विकास। और इसीस तो उन गुरुकुलो का नाम आश्रम पडा था। वास्तविक समवाय पद्धति उसी समय चलती थी। अत भारत के पूर्वकाल की शिक्षा पद्धति आश्रम और समवाय की पद्धति कही जा सकती है। उस समय श्रम के बाद दूसरा स्थान चरित्र का था अर्थात हृदय का था और तीसरा स्थान मस्तिष्क का था। जीवन का प्रारम्भिक काल म पच्चीस वर्षों तक विद्यार्थी श्रम पूर्ण जीवन व्यतीत करता था और (साथ-ही-साथ शास्त्र-पटुता तथा व्यवहार पटुता सघर्षशील ससार के उत्तरदायित्व तथा गुरुतर कार्यो का उदाहरण प्रस्तुत करता था)। उस समय परम्परा थी कि पाँच वर्ष तक जननी नौ वर्ष तक पिता और तदुपरात पच्चीस वर्षो तक आचार्य विद्या प्रदान करता था। विद्यार्थी पच्चीस वर्षों तक बल विद्या विक्रम तथा वीर्य की रक्षा करता था और इस प्रकार ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता था। ब्रह्म का अर्थ परमात्मा, विद्या और वीर्य तीनो होता है और चर्य का अर्थ उपासना,

अध्ययन और रक्षण होता है और इस प्रकार विद्यार्थी ब्रह्म की उपासना, विद्या का अध्ययन तथा वीर्य की रक्षा करते हुए गुरुकुल में समयापन करता था। ईश्वर, विद्या तथा वीर्य तीनों का क्रमश: उपासना, अध्ययन तथा रक्षण करता था और माध्यम था इनके लिए शारीरिक श्रम द्वारा किया हुआ उत्पादक कार्य। बृहस्पति शुक्राचार्य का दुश्मन था। परन्तु शुक्राचार्य बृहस्पति के पुत्र कच को अपनी गुप्त विद्या संजीवनी देने में कुछ भी नहीं हिचके। परन्तु शिक्षा देने के पहले उसकी पात्रता की पूरी परीक्षा कर ली गई और प्रमाण तो उसने तुरत ही दे दिया। उसने देवयानी की प्रणय प्रार्थना को तुरत ही ठुकरा दिया और बदले में इतनी कठिन तपस्या से सीखी हुई विद्या से भी बाज आया। इस तरह के चरित्र बल के अनेकों उदाहरण हमारे उस समय के आश्रमों में पाये जाते हैं।

जनक राजा थे—विदेह थे। विदेह उसे कहते हैं जिसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द के प्रति आकर्षण नहीं होता। जल के भीतर कमल के पत्ते की तरह रहता है उसे विदेह कहते हैं उसे ही वीतरागी कहते हैं। पर उन्होंने भी हल चलाकर लक्ष्मी को उत्पन्न किया जिससे संसार दीप्तमान हो गया। और सिद्ध कर दिया कि "पुरुषसिंह जो उद्यमी लक्ष्मी ताको वरे"। चक्रवर्ती राजा दिलीप ने गौओं की सेवा की और गौ रक्षा के लिये वे अपने प्राणों की बलि देने के लिये भी प्रस्तुत हो गये। भगवान श्रीकृष्ण का तो सारा जीवन ही कर्ममय रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि बिना कर्म के ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है और बिना किसी कर्म के यदि ज्ञान प्राप्त होता है तो उसे ज्ञान कहा नहीं जा सकता। क्योंकि ऊपर कहा गया है कि ज्ञान नम्र है। बिना कर्म के उत्पन्न ज्ञान कर्म की कसौटी के सामने आने पर असफल सिद्ध होगा और मनुष्य धोखा खायगा। इसलिये समवाय पद्धति के अतिरिक्त शिक्षा की कोई अन्य पद्धति नहीं है।

समवाय के चार पहलू हैं—

(१) हमें क्या करना है और किस प्रकार करना है इसका निश्चय कर लेना चाहिए।

(२) निश्चय के अनुसार काम करना चाहिये।

(३) और फिर किये हुए काम की आलोचना करनी चाहिये।

(४) और अन्त में खूबियों और खामियों के अनुसार अपना सुधार करना चाहिये।

समवाय के पहले पहलू का निश्चय करते हुये कार्यकर्ता, स्थान तथा समय की परिस्थिति का ध्यान रखना पडेगा । कार्यकर्ता की परिस्थिति तथा स्थान और इन दोनो परिस्थितियो के साथ ही-साथ कार्यकर्ता की मानस की परिस्थिति का भी ज्ञान रखना चाहिये । शिक्षक तथा शिक्षार्थी के सामने काम का उद्देश्य स्पष्ट रखना चाहिये । उद्देश्य मे आर्थिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक के अतिरिक्त भौतिक उद्देश्य रखना चाहिये । जैसे कपडा बना रहे हैं तो पहनने के लिये । अपने पहनने के लिये, अपने परिवार के पहनने के लिये तथा अपने साथ वालो के पहनने के लिये । काम करते समय ही यदि विद्यार्थी के मस्तिष्क मे जिज्ञासा उत्पन्न हो, और अवश्य होगी तो शिक्षक का काम उस ज्ञान पिपासा को केवल तृप्त करना ही नही है प्रत्युत तीव्र भी करना है । इस प्रकार जो ज्ञान प्राप्त होगा वही वास्तविक समवायी ज्ञान कहा जायगा और इस प्रकार जो काम होगा वही समवायी काम कहा जायगा । समवायी पद्धति द्वारा ज्ञान दिये जाने वाले पद्धति मे शिक्षक का स्थान मार्ग प्रदर्शक के अतिरिक्त और कुछ नही रह जाता । वह विद्यार्थियो के साथ साथ रहकर परोक्षरूप से जिज्ञासा का उद्दीपन करता रहेगा । और यथासम्भव उसकी तृप्ति करते हुये विद्यार्थियो मे नवीन की जिज्ञासा उत्पन्न करेगा । जिससे वे स्वाध्याय और स्वप्रयत्न द्वारा ज्ञान दीपक को और अधिक प्रज्वलित करेंगे । शिक्षक सदा यह देखेगा कि विद्यार्थी के हृदय मे उत्पन्न प्रदीप्त ज्ञान-दीपक अनायास अनाध्याय, अक्रम दुष्क्रम, विषय-बयार आलस्य दम्भ और अनिच्छा द्वारा बुझ न जाय । शिक्षक की सतत जागरकता के पहर मे विद्यार्थी कर्म करेगा और ज्ञान प्राप्त करेगा सेवा करेगा और ज्ञान प्राप्त करेगा। चिन्तन, अभ्यास और अनुभव द्वारा उसे पक्का करेगा और उसे ही समवायी ज्ञान कहा जायगा ।

तृतीय परिच्छेद

बुनियादी शिक्षा में स्वावलम्बन का स्थान

बुनियादी शिक्षा में स्वावलम्बन या स्वाश्रयिता को पूज्य बापू ने बुनियादी शिक्षा की रीढ़ कहा है। शिक्षा का अर्थ ही है मनुष्य की ईश्वर प्रदत्त सभी शक्तियों का विकास करना और सभी शक्तियों के विकास में ही स्वावलम्बन का भाव सन्निहित है। स्वावलम्बन की ओर हम लोग केवल आर्थिक दृष्टिकोण से देखते हैं। शाला या विद्यार्थी अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति जिस अंश में कर रहा है उसी अंश में शाला या विद्यार्थी स्वावलम्बी माना जाता है। परन्तु यहाँ हम भूल जाते हैं कि स्वावलम्बन के दूसरे पहलू भी हैं, जैसे नैतिक और आध्यात्मिक।

पुरानी पद्धति में शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को यदि नौकरी मिल जाय तो आर्थिक दृष्टि से वह स्वावलम्बी कहा जा सकता है परन्तु नैतिक, आध्यात्मिक और शारीरिक एवं अन्य दृष्टियों से तो वह स्वावलम्बी कदापि नहीं कहा जा सकता। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। आर्थिक दृष्टि से एक स्वावलम्बी व्यक्ति एक स्थान पर पहुँचता है जहाँ से उसके गन्तव्य स्थान तक पहुँचने के लिए कोई सवारी नहीं है तो उसके अर्थ का सारा पराक्रम समाप्त हो जाता है। और यदि दूसरी दृष्टियों से स्वावलम्बी न हो तो वहाँ पर वह पूरी विपत्ति में पड़ जाता है। उसी तरह से अर्थ-सम्पन्न व्यक्ति का पाचक किसी कारणवश कहीं अन्यत्र चला जाय तो उस व्यक्ति के पास सब प्रकार की अर्थ-सम्पन्नता रहते हुए भी उस दिन उसे एकादशी व्रत का पालन हठात् करना पड़ता है। परन्तु बुनियादी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति में सब प्रकार के स्वावलम्बन की पर्याप्त शक्ति रहती है। अतः वह जीवन-यापन में सफल होता है।

आर्थिक और शारीरिक स्वावलम्बन के साथ ही साथ नैतिक और आध्यात्मिक स्वावलम्बन भी आवश्यक है। केवल आर्थिक, शारीरिक तथा नैतिक दृष्टि से स्वावलम्बी व्यक्ति नीति और अनीति दोनों का आश्रय ले सकता है तथा आध्यात्मिक स्वावलम्बन के अभाव में वह अर्थ का अनर्थ कर सकता है। संसार के लिए वह महान् कष्टकर सिद्ध होगा। रावण ऐसा ही था जिसने

सारा भारतवर्ष ग्रस्त था। उसके समय में धर्म कार्य का लोप हो रहा था। सारांश यह कि आध्यात्मिक स्वावलम्बन भी मनुष्य के लिए अपरिहार्य है। आध्यात्मिक स्वावलम्बन होने पर ही उसके हृदय में करुणा का उद्रेक होगा, लोक संग्रह की भावना का स्फुरण होगा और इस प्रकार होगा वह सन्मार्ग का पथिक। अब स्पष्ट हो गया कि स्वावलम्बन का वृहद् अर्थ लेते हैं बुनियादी शालाओं में। और यदि हम एक ही अर्थ लें तो यह एकांगी अर्थ कहा जायगा। परन्तु बड़े दुख की बात है कि अधिकांश व्यक्ति स्वावलम्बन एक ही अर्थ अर्थात् आर्थिक स्वावलम्बन को आंकते हैं। अभी कुछ ही दिनों पहले एक माननीय मन्त्री ने निरीक्षण किया। वे बार बार विद्यार्थियों से यही जानना चाहते थे कि वे पढ़कर सरकारी नौकरी चाहेंगे कि जीवन में प्रवेश करके उत्पादक कार्य करेंगे। और जब विद्यार्थी उनसे यह कहते थे कि वे नौकरी नहीं करेंगे तो वे अपनी प्रसन्नता प्रकट करते थे। और उन्होंने व्यक्त किया ठीक है बुनियादी शालाओं के विद्यार्थियों से यही अपेक्षा की जाती है कि वे नौकरी नहीं करेंगे और स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करेंगे। मैंने कहा कि यह ठीक है कि मेरे विद्यार्थी स्वावलम्बी होंगे नौकरी नहीं करेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि वे नौकरी के पीछे परेशान नहीं होंगे। परन्तु अवसर प्राप्त होने पर वे नौकरी भी प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि हमारे स्वावलम्बन की परिभाषा में यह भी आता है कि परिस्थितिवश जो कोई भी कार्य सामने आये व्यक्ति उस चुनौती को स्वीकार कर उसमें अच्छा अच्छा फल लाये। इस पर वे चौंके और उन्होंने कहा कि यह तो ठीक नहीं है फिर तो नौकरी में भीड़ लगाने वाले लोगों की संख्या की वृद्धि ही होगी। मैंने कहा कि मेरे विद्यार्थी नौकरी न मिलने पर अन्य विद्यार्थियों की तरह बेकारों की संख्या की वृद्धि नहीं करेंगे और भुखमरी के शिकार नहीं होंगे। किन्तु आवश्यकता पड़ने पर नौकरी के अयोग्य सिद्ध न होकर और शासन व्यवस्था में हाथ बटाने लायक होंगे, स्कूलों से निकले हुए विद्यार्थियों की अपेक्षा वे अधिक सम्पन्न होंगे, क्योंकि उन्हें स्वशासन की शिक्षा नहीं दी जाती जबकि हमारे यहाँ विद्यार्थी प्रारम्भ से ही स्वशासन की शिक्षा ग्रहण करते हैं। अब बात रही भीड़ की। तो इस सम्बन्ध में मेरा यह कहना है कि भीड़ तो बढ़ेगी ही, जबतक वर्तमान सामाजिक ढांचा रहेगा। इसके लिये शिक्षा समाज और सरकार तीनों उत्तरदायी हैं। एक कुम्हार उतने ही घंटे काम करके समाज में उस सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आर्थिक अवस्था को नहीं प्राप्त कर सकता जब कि उतने ही घंटे काम करके या उससे कम ही घंटे काम करके एक कुर्सी पर बैठने वाले बाबू एक

आला लेकर घूमनेवाला डाक्टर, एक बहस करने वाला वकील या भाषण देने वाला प्रोफेसर उस कुम्हार की अपेक्षा कम योग्यता, कम सहिष्णुता और कम उदारता तथा कम श्रम करके अधिक प्रतिष्ठा अधिक अर्थ तथा अधिक मौलिक मुद्रा की उपलब्धि कर सकता है। ऐसी अवस्था में सभी व्यक्तियों का झुकाव इन उत्पादक श्रमों की अपेक्षा उन कुर्सी वाले कामों के प्रति अधिक होगी। मेरी बातों को सुनकर मंत्री महोदय जी चुप हो गये और उन्होंने हमारे तर्कों के बल को पहचाना और स्वीकार किया।

महामना पंडित मदनमोहन मालवीयजी महाराज कहा करते थे कि अपने विश्वविद्यालय से निकले हुए विद्यार्थियों से मैं अपेक्षा करता हूँ कि वे झाड़ू देने से लेकर उपकुलपति के उच्च पद पर्यन्त जिस पद पर रख दिये जायेंगे उस पद का संपादन योग्यता पूर्वक करेंगे। तो हम बुनियादी शिक्षक अपने विद्यार्थियों से यही अपेक्षा करते हैं कि वे परिस्थिति और समय के अनुसार जिस कार्य को भी अपने हाथ में लें उसका सम्पादन सुचारुरूपेण सफलता पूर्वक करेंगे और यह होगी उनका स्वावलम्बन की एक व्यावहारिक कसौटी।

एक बालक है उसे सीमित साधना के साथ प्रतिकूल परिस्थिति में रख दिया जाता है और वह अपने बुद्धिबल तथा बाहुबल का उपयोग कर उन्नति की ओर अग्रसर होता है, अपना अस्तित्व स्थिर कर लेता है, विरोधों पर विजय प्राप्त कर लेता है और हृदय-बल के द्वारा उस प्रतिकूल परिस्थिति में भी सहयोग और सम्भावना का प्रसार करते हुए चतुर्दिक सत्य का प्रकाश करता है, शिव की कामना करता है और सुन्दर का निरूपण करता है। वह सच्चे अर्थ में नई तालीम का विद्यार्थी है। यही उसकी कसौटी है। [illegible] पद्धति से निकला हुआ विद्यार्थी तो सीमित साधना द्वारा प्रतिकूल परिस्थिति में कुचला जायगा और केवल काम और ज्ञान की पद्धति से पढ़ा हुआ विद्यार्थी, जिसके हृदय का सम्यक विकास न हुआ हो, कुचल भले जाय पर मंगल का सृजन तो कदापि नहीं करेगा। ऐसी अवस्था में नई तालिम का विद्यार्थी सफल सिद्ध होगा और नई तालीम ही सफल तालीम सिद्ध होगी।

शिक्षा की कसौटी स्वावलम्बन ही क्यों रखी गई, यह भी एक प्रश्न है। इस पर भी हम विचार कर लें। इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले एक बात मैं सुना देना चाहता हूँ। कुछ विद्वान यह समझते हैं कि बुनियादी शिक्षा में काम का महत्त्व तो अवश्य होना चाहिए किन्तु आर्थिक स्वावलम्बन का टंटा प्रश्न नहीं रखना चाहिये। उन लोगों का मत है, इससे शिक्षा पर असर

पड़ेगा बौद्धिक स्तर के ऊँचे उठने में रुकावट होगी और साथ ही विद्यार्थियों का शोषण भी हो सकता है। इस सम्बन्ध में मेरा नम्र निवेदन यह है कि उनके मस्तिष्क में अभी शिक्षा की स्पष्ट रेखा नहीं है। वे इतिहास, भूगोल आदि तथ्यों के संग्रह मात्र को ही शिक्षा तथा बुद्धि का विकास कहते हैं। परन्तु हम उस अधूरी शिक्षा कहेंगे। छात्र, जूता बना रहा है लेकिन सुन्दर और मजबूत जूतों का निर्माण उसने न किया तो उसका उस शक्ति का निर्माण कहाँ हुआ जिससे वह मजदूरी का पहचान कर सके, उस शक्ति का विकास कहाँ हुआ जिससे वह समझ सके कि उसके जूते की बाजार में पूछ क्या नहीं है और फिर उसमें लोक-कल्याण की भावना के जागरित होने का अवसर कहीं मिला जिससे उसका हृदय विकसित होता। और इन गुणों के अभाव में केवल जूता बनाने की सैद्धांतिक योग्यता और किसी प्रकार से काम कर लेने की भावना मात्र से वह शिक्षित कैसे कहा जायगा? यही नहीं बल्कि आर्थिक स्वावलम्बन के पहलू का हटा लेने से भारी अशिक्षा का डर है, मोह और अज्ञान के पलने की शंका है। और विद्यार्थी तब बेगारी की भावना से काम करेगा। श्रम के प्रति वास्तविक निष्ठा उसके हृदय में नहीं जागेगी। सीमित समय में सुपुर्द काम उसे करना है इसलिए वह करेगा। इसके प्रति भी हम सावधान रहना चाहिये। और इसलिए आर्थिक स्वावलम्बन पर इतना जोर दिया गया है। अब केवल बात रही शोषण की। इसकी सम्भावना इसलिये नहीं है कि काम का नाप तो मिल्वस के निर्माताओं के हाथ में है। शिक्षक तो सहायक माना गया है। और इसी बात को देखने के लिए निरीक्षकों की सेना भी तो तैयार है। ऐसी अवस्था में शोषण की आशंका नहीं करनी चाहिये। और फिर जहाँ उत्पादित वस्तुओं का उपयोग स्वयं करना है या समाज के कल्याण की भावना से उत्पादित करना है वहाँ शोषण का प्रश्न उठाना आवश्यकता से अधिक सावधानी दिखलाना कहा जाय तो अनुचित नहीं होगा।

अब आए हम मूल प्रश्न पर अर्थात स्वावलम्बन ही क्या?

हम जब प्यासे लगती है पानी पीते हैं और भूख लगती है तब खाते हैं, कपड़े की आवश्यकता होती है तब कपड़ा पहनते हैं और नहीं जरूरत रहने पर नहीं पहनते। कहने का तात्पर्य यह कि मनुष्य आवश्यकता के अनुसार काम करता है। महाभारत के युद्ध में भारी जन-हानि हुई। हमने आवश्यकता समझी कि जन शक्ति बढ़ानी चाहिये और तब नियम बनाये कि बिना पुत्रोत्पत्ति के

स्वर्ग नहीं मिलेगा। इसी प्रकार जब नाजी जर्मनी को सैनिकों की आवश्यकता हुई तो डाक्टर कोसिंग (Dr Ko Sching) ने Rennsylvania Schoolmers's week proceeding, 1939) जर्मनी के आदर्श मनुष्य की रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की—' It is the ideal of the racially pure German of the Nordic endowed with all the racial characteristics ascribed to him in National Socialist thought to wit, a strong and beautifully balanced body untiring and resistant to any kind of hardship and, chief of all, the hardships of warfare, loyalty, obediance to the appointed leaders rather than individual, self assertion, a passionate desire to help in the accomplishment af German nation as the master nation above all the races Most of these qualities are the qualities of the soldier The Soldier is the new ideal of a man

इस तरह सम्पूर्ण राष्ट्र को ही सैनिक बाने में देखने की आकांक्षा करना और असैनिक व्यक्तियों को पतित समझना कितना भयंकर चिन्तन और शिक्षा का उद्देश्य है।

समता के पुजारी तथा संस्थापक एवं मार्क्स के प्रिय शिष्य महात्मा लेनिन ने कहा है "The School, a part from politics, is a lie and a hypocrisy" अर्थात शिक्षा संस्थाएँ राजनीति विहीन रहने पर सारहीन तथा असत्य की प्रतिपादिनी होती हैं। इटली में शिक्षा का उद्देश्य "Work obey and Fight था। 'काम करो, आदेश का पालन करो तथा लड़ो।' इस प्रकार स्पष्ट लिया कि जिस देश में जिस प्रकार के व्यक्ति की आवश्यकता होती है वैसे व्यक्तियों को तैयार करने के लिए उसी प्रकार की शिक्षा दी जाती है।

जब हमारे यहाँ अंग्रेजों का शासन हुआ तो उनके राज के संचालन में सहायक सिद्ध हों और साथ ही उनके व्यापार-वर्द्धन में सहयोग दें। अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति के संस्थापक थे मैकॉले ने अपने पिता के पास एक पत्र सन् १८३६ में लिखा था—

"If our plans of education are followed up there not be a single idolator among the respectable

classes in Bengal thirty years hence"—अब इसी बात को दूसरे ढंग से लार्ड मेकॉले साहब के गुरु मिस्टर चार्ल्स ग्रांट के मुख से इस प्रकार सुनिए—"And wherever, we may venture to say, our principles and language are introduced our commence will follow"—(General Appendix to Report from Select Committee on the affairs of East India Company, London, 1832, Page 88) अर्थात जहाँ कहीं भी हम लोगों के सिद्धान्त तथा भाषा का प्रचलन हुआ हम लोगों का व्यापार फैलेगा। इसी प्रकार सर चार्ल्स ट्रेवलियन ने अपनी पुस्तक "On the Education of People of India, 1838" में लिखा है कि भारतीयों के मस्तिष्क से उनकी स्वतन्त्रता की याद को बिल्कुल मिटा देने के लिए उनमें नवीन शिक्षा तथा सुधार का प्रचार करना चाहिए। लार्ड मेकाले ने अपनी बात को और भी स्पष्ट करने के लिए आगे लिखा है—"Form a class who may be interpreters between us and the millions we govern, a class of persons Indians in blood and colour, but English in taste, in opinions, and morals and intellects" अर्थात एक वर्ग का निर्माण करो। जो हमारी तथा हमारे करोड़ों शासित प्रजा के मध्य में द्विभाषीय का काम करे, वह वर्ग ऐसा हो जो रूप रंग तथा रक्त से भारतीय हो परन्तु रुचि, विचार, नैतिकता तथा बुद्धि से अँग्रेज हो।

अब स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज शासकों को किस प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता थी। और उन लोगों ने वैसे ही स्कूलों को खोल कर और उसी प्रकार की पढ़ाई का प्रचलन कर वैसे ही व्यक्तियों को तैयार करना शुरू किया। उन लोगों ने प्राचीन पाठशालाओं का विनाश किया, जिसे १८३३ के चार्टर के Education शीर्षक में स्वीकार भी किया गया है और नये प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का निर्माण भी किया। हम इसके विस्तार में नहीं जाना चाहते और न यह दिखलाना चाहते हैं कि अंग्रेजों ने किस प्रकार किलों के स्थान पर विश्वविद्यालयों का निर्माण कर अपने राज्य को दृढ़ किया।

भारत आजाद हुआ और पूज्य बापू ने देखा कि अब हमें ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो शरीर से स्वस्थ्य हों और मन से दृढ़ संकल्पवाले हों तथा जिनका हृदय बलवान तथा विशाल हो जो सहिष्णु हो चरित्रवान् हों

तथा जिनकी भुजाओं में इतना बल हो कि वे नये भारत का निर्माण कर सकें, जिसमें शोषण न हो, छूआछूत न हो, ऊँच-नीच की भावना न हो और हों वे पूर्ण स्वावलम्बी। इस प्रकार के व्यक्तियों से भरे हुए नये समाज का उदय हो जो भारत से रोग शोक, दुःख-दारिद्रय, ईर्ष्या फूट और धर्मान्धता तथा अन्य प्रकार की संकीर्णताओं को दूर कर सकें—वे ऐसे समाज की रचना कर सकें जो शासनविहीन, विकेंद्रित तथा शोषणहीन हो, साथ ही वह ऐसे समाज की रचना कर सकें जो अहिंसा, प्रेम और सत्य पर आधारित हो तथा प्रगति के पथ पर संसार की प्रतिद्वंद्विता में सफलतापूर्वक दौड़ सके, जिसकी आँख, कान, नाक आदि सभी इन्द्रियाँ मान-मर्यादा के लिए उन्मुक्त हों और जो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त का प्रचार कर सकें। इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर नई तालीम का उद्भव हुआ।

नई तालीम को जीवन की शिक्षा कहते हैं और यह जीवन के माध्यम से दी जाती है। यह गर्भावस्था से मृत्यु पर्यन्त तक चलती रहती है, ऐसा महात्मा जी का कथन है। परन्तु मैं इससे भी एक कदम आगे बढ़कर कहने के लिए तैयार हूँ। हम हिन्दू हैं, हम पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं। पश्चिम की शिक्षा पद्धति मनुष्य को अपने पैरों पर खड़ा तो अवश्य करती है किन्तु उसकी दृष्टि मनुष्य के इस जीवन तक ही सीमित रखती है। वह भौतिक शिक्षा मात्र को ही शिक्षा समझती है परन्तु हृदय के विकास तथा लोक संग्रह की भावना के माध्यम से आध्यात्मिक प्रगति के महत्व को स्वीकार करने की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करती। पर नई तालीम जैसा ऊपर लिखा गया है भौतिक तथा आध्यात्मिक स्वावलम्बन की भावना का संस्कार उत्पन्न कर मनुष्य की आत्मा को मृत्यु की खाड़ी के उस पार भी ले जाती है और इस प्रकार उत्पन्न किया गया संस्कार मृत्यु की खाड़ी के उस पार के जीव के क्रिया कलाप का निदर्शन तथा निदान करता है। यह है नई तालीम में स्वावलम्बन के स्थान का महत्व।

१—नई तालीम में सामाजिक प्रतिवेषों का स्थान

नई तालीम जीवन की शिक्षा है और जीवन के द्वारा दी जाती है

मनुष्य एक व्यक्ति है। व्यक्तियों के समूह को ही समाज कहते है। समाज और व्यक्ति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। यदि व्यक्ति अच्छे होंगे तो समाज भी अच्छा होगा और समाज यदि अच्छा होगा तो व्यक्ति अच्छे होंगे। अत समाज का धर्म है कि व्यक्ति को स्वच्छ रखे और व्यक्ति का धर्म है कि समाज को स्वच्छ रखे। जो समाज अपने अन्दर रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उन्नति तथा विकास का सम्यक् अवसर देता है और सबकी भलाई चाहता है वास्तव में वही सर्वोदय समाज है। उस समाज में अधिकांश की भलाई का भाव नहीं रहता बल्कि सबकी भलाई का भाव रहता है। अधिकांश की भलाई की बात तो पश्चिम के बहुमत के सिद्धांत की देन है। यह हमारी वस्तु नहीं है। हमने तो 'सर्वभूत हिते रता' तथा "सर्वे भवन्तु सुखिन' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। ऐसा है हमारा समाज।

व्यक्ति और समाज में इतना स्पष्टीकरण करने के उपरांत हम अपने मूल प्रश्न पर आते हैं कि नई तालीम जीवन की शिक्षा है। जीवन-यापन समाज में होता है। समाज की इकाइयाँ एक दूसरे से सम्बद्ध हैं काम के द्वारा और वह काम तीन भागों में विभाजित हो सकता है—हृदय को पुष्ट करनेवाले काम मस्तिष्क को पुष्ट करनेवाले काम और उदर को पुष्ट करनेवाले काम। तीनों प्रकार के कामों में तीन प्रकार की पौष्टिकता रहती है। परन्तु किसी काम में किसी प्रकार की पौष्टिकता की विशेषता होती है।

नई तालीम में काम ज्ञान और आनन्द की विभाजक रेखाएँ नहीं खींची जा सकतीं। सत चित और आनन्द की तरह बाहु, मस्तिष्क तथा हृदय तीनों को पुष्ट करने वाले काम ही सच्चिदानन्द का दर्शन कराते हैं। परन्तु जैसा हमने ऊपर कहा है कि किसी काम में किसी प्रकार की पौष्टिकता विशेष होती है। जैसा भगवान के २४ अवतारों में प्रत्येक अवतार अपनी-अपनी एक-एक विशेषता के लिए प्रसिद्ध है उसी प्रकार सामाजिक काम ज्ञान

की वृद्धि तो करते हैं, क्षुधा तृप्ति द्वारा तथा आवश्यक बन्धना द्वारा शरीर को तो पुष्ट करते ही हैं तथा मेवा और उल्लास का वातावरण उपस्थित कर हृदय का विशाल और उन्मुक्त करते हैं परन्तु इन सामाजिक कार्यों तथा पर्व त्योहारों में विशेषतया हृदय के विकास तथा मस्तिष्क के उन्नयन की बात आती है तब उसके उपरान्त शरीर की पौष्टिकता की बात आती है।

हम यहाँ सामाजिक प्रतिवेश द्वारा यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि मनुष्य किस प्रकार अपनी तीनों शक्तियों का सम्यक् विकास इन प्रतिवेशों का उचित उपयोग करके कर सकता है और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की तरफ आगे बढ़ते हुए मृत्यु के उस पार की भी बिगड़ी बना सकता है।

सामाजिक प्रतिवेश में मुख्यतया उन बातों का वर्णन किया जायगा जो प्रतिदिन समाज में होनेवाले पर्व-त्योहार, रीति रिवाज खुशी-गमी तथा हास परिहास से सम्बन्ध रखते हैं। सामाजिक प्रतिवेश की तुलना हम उस प्रकार की नदी से कर सकते हैं जिसका एक किनारा प्राकृतिक प्रतिवेश तथा दूसरा किनारा औद्योगिक प्रतिवेश को छूता चलता है।

जैसा हमने ऊपर लिखा है कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है इसलिए उसे समाज से अलग रख कर उसके विकास की कल्पना किंडरगार्टन तथा डाल्टन-प्लान में भले की जाय परन्तु नई तालीम में इस प्रकार की कृत्रिमता की कल्पना ही नहीं की जा सकती। हम तो बालक का प्रारम्भ से ही समाज में रखकर समाज से मानने लायक गुणों का उसमें उत्पन्न करना है जिससे वह आगे चलकर सच्चे अर्थ में सामाजिक प्राणी हो और जिस प्रकार उसने समाज से बहुत कुछ ग्रहण कर अपने को पुष्ट किया है उसी प्रकार समाज को भी कुछ दे और समाज-सचालन में सहायक सिद्ध होकर उसकी सुख-सुविधा तथा मंगल की वृद्धि करते हुए उस 'सर्वे भवन्तु सुखिन' की ओर ले चले जिससे सर्वोदय समाज की स्थापना हो सके।

समाज के कण कण में और समाज के प्रत्येक हलचल व्यवहार तथा रस्मो रिवाज में ज्ञान की राशि बिखरी पड़ी है और बालक सफल शिक्षक के नेतृत्व में और ध्यानपूर्वक चले तो उसे निश्चय ज्ञान की प्राप्ति होगी। दत्तात्रेय ने २४ गुरुओं को इसी समाज में देखा और उनको आग्रहपूर्वक अपने आचरण में समावेश कर प्रत्यक्ष को प्राप्त कर लिया। उन किसी संगठित शिक्षण संस्था में कृत्रिम ढंग से शिक्षा नहीं दी गई। संसार के सभी महापुरुषों में

समाज में ही अकृत्रिम ढंग से शिक्षा ग्रहण की और इस प्रकार परम तत्त्व की उपलब्धि हुई और इसलिए तो कहा गया है कि "समाजो परमेश्वर ।"

आज हम अपने नई तालीम के विद्यालयों में भी रूढ़िबद्ध होते चले जा रहे हैं यह बड़े दुःख की बात है। जैसे पुराने प्रकार के विद्यालय समाज से अलग होकर कुछ खास प्रकार की मस्तिष्क सम्बन्धी सूचनाएं विद्यार्थी के मस्तिष्क में भर देने मात्र को ही शिक्षा कहते थे और अक्षर ज्ञान को शिक्षा का साधन न मानकर शिक्षा मान बैठे थे और जिस प्रकार उन विद्यालयों से निकलनेवाले विद्यार्थी समाज के लिए अनुपयुक्त होते थे उसी प्रकार नई तालीम के विद्यालयों में भी सामाजिक प्रतिवेश तो नाममात्र के लिए ही रह गया है और कुछ खास प्रकार के उद्योगों का समावेश स्कूल की पढ़ाई में कर और उनका ही अधकचरा ज्ञान देकर तथा स्वतन्त्र रूप से अक्षर ज्ञान कराकर नई तालीम द्वारा शिक्षा दी जाने की इतिश्री समझ बैठे हैं। इस प्रकार नई तालीम के विद्यालय पुरानी तालीम के विद्यालयों की तरह कुछ कुछ रूढ़िबद्ध होते चले जा रहे हैं। यह रूढ़िबद्धता अपने आप उठ जायगी जब हम सामाजिक प्रतिवेशों का सम्यक् उपयोग कर सम्यक् ज्ञान प्राप्ति की ओर दृष्टि रखेंगे। इसीलिए नई तालीम के विद्यालयों में सामाजिक प्रतिवेशों का अपना अलग बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है।

अब हम समझते हैं कि यह स्पष्ट हो गया होगा कि नई तालीम के विद्यालयों में सामाजिक प्रतिवेशों का क्या स्थान है।

सामाजिक प्रतिवेशों का नई तालीम के विद्यालयों में स्थान है ऐसा हमने लिखा है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि पुराने ढंग से चलनेवाले विद्यालयों में इसका स्थान नहीं है। सच्ची शिक्षा जहाँ कहीं भी दी जाती है चाहे वह पुरानी तालीम का विद्यालय हो सभी स्थानों पर सामाजिक प्रतिवेशों का बराबर मूल्य है। और अब इस राज्य में नई तालीम और पुरानी तालीम की विभेदक दीवारें तो ढह ही रही हैं अतः अब इसका प्रश्न ही नहीं रहा।

पुराने विद्यालय इतिहास भूगोल नागरिक शास्त्र आदि के तथाकथित ज्ञान संवर्द्धन, सञ्चयन तथा सम्पुष्टिकरण सामाजिक प्रतिवेशों का उचित उपयोग करके कर सकते हैं।

पुराने ढंग के चलनेवाले विद्यालयों में उनकी अपनी अनेक समस्याओं के साथ राष्ट्रव्यापी समस्या अनुशासनहीनता की आ गई है। हम कहेंगे कि समझदार (केवल बुद्धिमान और पंडित शिक्षक नहीं, केवल त्यागी और तपस्वी शिक्षक नहीं) और लगनशील शिक्षक के नेतृत्व में यदि सामाजिक प्रतिवेशों का उचित उपयोग किया जाय तो ज्ञान और रस की वृद्धि के साथ-ही-साथ अनुशासन की समस्या भी दूर हो जायगी। ऐसा है महत्त्व इन सामाजिक प्रतिवेशों का।

रह गई बात नई तालीम की। तो इसमें तो स्पष्ट ही है कि समाज की हरेक हलचल हमारे शिक्षा की माध्यम हैं। अतः नई तालीम में तो इनका विशेष महत्त्व है और सामाजिक प्रतिवेशों द्वारा शिक्षा ग्रहण करने के लिए विशेष प्रकार की कला, सूझ्मदर्शिता, प्रतिभा, कल्पना तथा सुरुचि, समझदारी, लगनशीलता, त्याग और पांडित्य की आवश्यकता है और इतना है महत्त्वपूर्ण स्थान नई तालीम में इन सामाजिक प्रतिवेशों का।

२—समाज में पर्वों का स्थान

उनके उदय होने के कारण, उनका प्रभाव

यन्त्र निर्जीव होते हैं परन्तु उन यन्त्रों की सतह पर काम करनेवाले अणु भी अनवरत काम करने के कारण थक जाते हैं और उन्हें विश्राम की आवश्यकता होती है। उनके सुधार रूप से संचालन के लिए समय समय पर स्निग्ध पदार्थों का प्रयोग भी किया जाता है। यही अवस्था जीवित यन्त्र वाले प्राणों तथा प्राणियों से बननेवाले समाज की भी है। तो जितने पर्व और त्योहार हम मानते हैं वे सभी व्यक्ति और समाज की थकान को दूर करते हैं उनमें नई आशा और नई उमंग का संचार करते हैं तथा नए विचारों की प्रेरणा देते हैं। मनुष्य उन त्योहारों को मनाकर शिक्षा भी ग्रहण करता है और नए उत्साह के साथ जीवन-संग्राम में जुटता है।

जीवन चक्र कुम्भकार के चक्र की तरह घूमता है परन्तु जब कुम्भकार के चक्र में शिथिलता आने लगती है तो कुम्भकार अपने दण्ड प्रयोग से उसकी गति में तीव्रता ला देता है। उसी प्रकार जीवन चक्र जब शिथिल होने लगता है तो ये पर्व और त्योहार तथा जयन्तियाँ मनुष्य के जीवन में गति उत्पन्न करती हैं। मनुष्य अपनी भूलों को सुधारता है और नया उल्लास नई चेतना तथा नई दृढ़ता के साथ आगे बढ़ता है।

किसे मालूम नहीं कि सीता के उज्ज्वल चरित्र ने कितनों को सती बनाया राणा और शिवा के चरित्रों ने देश पर सहायक होने की प्रेरणा फूंकी और किसे नहीं मालूम है कि बालक गाँधी राजा हरिश्चन्द्र के नाटक को देखकर ही सत्यव्रती और आगे चलकर महात्मा हो गया।

अंगरेज कवि लौंगफेलो ने अपनी कविता 'साम आफ लाईफ' (Pslam of life) में सत्य ही लिखा है कि बड़े आदमियों के जीवन चरित्र हमें स्वयं बड़े बनने की प्रेरणा देते हैं जिससे आगे चलकर समय सकत पर हम स्वयं अपना पदचिह्न छोड़ जायें जो पीछे आनेवालों के लिए मार्ग प्रदर्शन का काम कर उनका पथ प्रशस्त करता रहे।

पर्वों के उदय होने के कारण

बादल देखकर मोर नाचते हैं। मोरों के लिए बादल का आना आनन्द का पर्व है। मनुष्य का प्रकृति के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है तो प्रकृति के उल्लासमय वातावरण का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। दीपक पर पतंग प्राण न्यौछावर करता है और इसका कारण पतंग नहीं बतला सकता। मीठी गंधों से लदी हुई वायु जीव को बेहोश करती है। यदि जीव बेहोश न हो तो यह उसकी कमी समझी जायगी या उसके भीतर के पुरुष का जो चेतन रूप है उस पर अधिक अधिकार माना जायगा जो अप्राकृतिक है। तो इस प्रकार बहुत-से पर्व मनुष्य तथा प्रकृति की देन के रूप में आते हैं। साथ ही मनुष्य स्वभाव से वीर पूजा पसन्द करता है। मनुष्य अपने से बड़ी शक्ति के सामने झुक जाता है। तो हम किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़े हुए मनुष्य की जयंतियाँ मनाते हैं। उनके कार्यों की याद में उनके विजय कार्यों की तिथियाँ मनाते हैं और साथ ही उनकी पुण्य तिथियाँ मनाते हैं और इस कारण भी पर्वों का उदय होता है।

ऐसे भी अवसर आते हैं कि मनुष्य का व्यवसायपूर्ण जीवन कुछ विश्राम पाता है और उस समय हम आनन्द की खोज में रहते हैं जिससे उनके उद्वेग, हृदय की अशान्ति, मस्तिष्क की विक्षिप्तता तथा शरीर की थकावट दूर हो सके। तो हम इस प्रकार के भी त्योहार मनाते हैं। कोई घटना घटती है और जिस घटना का प्रभाव मनुष्य के ऊपर या समाज के ऊपर सुखदायक होता है तो उस घटना की तिथि भी हम पर्व की तरह मनाते हैं।

मनुष्य का यह स्वभाव है, या जीवमात्र का यह स्वभाव है कि वे सुखकर वस्तु को बार-बार दुहराना चाहते हैं। तो इस कारण भी हम पर्व त्योहारों को मनाना चाहते हैं।

हमारे यहाँ इन्हीं कारणों से पर्वों को मनाया जाता था किन्तु अब इनके मनाने की दूसरी परम्पराएँ भी बन पड़ी हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार सुखद तिथियों की स्मृति ताजी रखते हैं और दुखद बातों को भूल जाने का प्रयत्न करते हैं। हम अपने जीवन में पराजय की कल्पना नहीं करते वरन् सुख और समृद्धि का सपना देखते हैं और इसी कारण पर्व त्योहारों और जयन्तियों को मनाते हैं। परन्तु पश्चिम में एक विचार आया कि जीवन में केवल सुख ही सुख नहीं है दुख भी है। और दुख का अपना अलग महत्व

है। और उसमे कभी-कभी इतना प्रभाव उत्पन्न होता है, जीवन के सुधार मे इतना वल मिलता है जितना सुख नही कर सकता। किन्तु यह पश्चिम की देन है। हमारे यहाँ हमारे शास्त्रकारो ने इसको मान्यता नही दी है। किन्तु आज पश्चिम और पूरब की दीवारें टूट रही हैं। एक दूसरे के रीति रिवाज एक दूसरे पर प्रभाव डाल रहे हैं। इसलिए हमने उन पर्वा को भी मनाना शुरू कर दिया है जिनका अन्त दुखान्त होता है जस नेताओ की पुण्य तिथियाँ। उनसे हम प्रेरणा ग्रहण करते हैं शिक्षा ग्रहण करते हैं और ग्रहण करते है सत्य पर शहादत होने की शक्ति और साथही ग्रहण करते है उन परिस्थितिया से शिक्षा जिन कारणा स इन पुण्य तिथियो का अवसर उपस्थित हुआ। इस तरह हमने देखा कि पर्व-त्योहारो की उत्पत्ति प्राकृतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनतिक कारणा स होती है।

अब रह गया इन पर्वों के मनाने का समाज पर क्या प्रभाव पडता है? भारत बहुत पुराना देश है और यदि यह कहें कि ससार का सबस पुराना देश है तो कोई अत्युक्ति नही होगी। इसी कारण यहाँ मनाए जानवाले पर्व भी अति प्राचीन हैं। प्राचीनता म मिश्रण अनिवाय और स्वाभाविक है। हमारे पर्व-त्योहारो मे मिश्रण हुआ है। और यह भी स्वाभाविक है कि मिश्रण बुराई की ओर होता है भलाई की ओर नही और कालक्रम म अच्छाइयो का नाश होता है बुराइयो का कम नाश होता है। इन्हा प्राकृतिक नियमो के कारण हमारे पर्व-त्योहारो म बहुत मिश्रण हुआ है और समाज पर उसका कुप्रभाव भी पडा है। दृष्टान्तस्वरूप हम होली के पर्व का ही ले सकते हैं। उसम इतना मिश्रण हुआ है कि उसका उच्च लक्ष्य आज समाप्तप्राय हो रहा है।

परन्तु पर्व-त्योहारो के मनाने से मनुष्य शिक्षा ग्रहण करता है तथा प्रेरणा प्राप्त करता है जसा हमने ऊपर लिखा है और समाज पर सुन्दर असर पडता है। और इन्ही सुन्दर प्रभावो के कारण समाज म पर्व-त्योहारो का महत्त्व है। जिस समाज म जितने ही पर्व और त्योहार रहत हैं वह समाज उतना ही जागरूक और सचेत माना जाता है। भारतवर्ष के विशाल देश होने और विभिन्न प्रकार की ऋतुओ की क्रीडास्थली तथा अपनी प्राचीनता के कारण यहाँ पर्व-त्योहारो की बहुलता है। शिक्षण-सस्थाओ म इन पर्व-त्योहारा तथा तिथियों म से सुन्दर अवसरो का चयन कर लेना चाहिए और उन्हें उपयुक्त ढंग से इन्हें मनाना चाहिए।

३—संस्थाओं में पर्व किस प्रकार मनाना चाहिए ?

उनसे किस प्रकार मनुष्य के बाहु, हृदय तथा मस्तिष्क का विकास किया जा सकता है ?

सत्र के प्रारम्भ में वर्ष में घटनेवाले पर्वों की तालिका निश्चित कर लेनी चाहिए। वह तालिका सर्वविदित हो। पर्व उपस्थित होने के तीन दिन पहले ही विद्यालय के परिवार की एक बैठक होनी चाहिए और बैठक में पर्व मनाने की योजना प्रस्तुत कर लेनी चाहिए। साथ ही एक बात और कर लेनी चाहिए कि पर्व के सम्बन्ध की जितनी भी अधिक पुस्तकें प्राप्त हो सकें उन्हें शिक्षक और छात्र मिलकर संग्रहीत करें। अध्ययन तथा चिन्तन गंभीरता के साथ होना चाहिए। अध्ययन तथा चिन्तन का नोट तैयार कर लेना चाहिए और नोटों के आधार पर कविता, निबन्ध आदि प्रस्तुत करने की योजना बना लेनी चाहिए। कार्यों का बँटवारा कर लेना चाहिए और जिस पर जिस काम का उत्तरदायित्व है उसे सुचारुरूपेण पूरा करें। शिक्षक सहयोग तथा मार्ग प्रदर्शन करें। अध्ययन करनेवाले ग्रंथों की तालिका भी तैयार करा दें और विद्यार्थियों को नोट करा दें। विद्यार्थियों द्वारा नोट की हुई सामग्रियों का संशोधन करें। कविता, निबन्ध तथा प्रवचन में स्वयं भाग लें।

पर्व त्योहारों को मनाने में अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। इस सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए। अर्थ संग्रह में भी सावधानी रहनी चाहिए और व्यय में तो पूरी सावधानी बरतनी चाहिए। अर्थ संग्रह आवश्यकतानुसार सहयोग पर हो और व्यय का पूरा विवरण पर्व समाप्ति के दूसरे दिन ही तथा शीघ्र ही सुना देना चाहिए। शिक्षक भी व्यय नियन्त्रण की बात पर पूरा ध्यान दें। पर्व जिस दिन मनाया जाय उस दिन सुबह में व्यक्तिगत और सामूहिक सफाई विशेष ढंग से करनी चाहिए। भजन और प्रभातफेरी भी सुबह में हो जाए तो और अच्छा हो। वायुमण्डल सुगन्धित करने के लिए गंध धूप का भी प्रयोग करना चाहिए जिससे आत्मा तृप्त तथा मन शुद्ध हो। पर्व मनाने में ग्रामीणों का भी सहयोग लेना आवश्यक है और उन्हें भी निमन्त्रित

करना चाहिए। इसके बाद जिस कारण पर्व की उपस्थिति हुई हो उन कारणों पर प्रकाश डालना चाहिए। भाषण, कविता निबन्ध, प्रहसन आदि के प्रदर्शन का प्रबन्ध होना चाहिए और पर्व मनाने के उपरान्त धन्यवाद ज्ञापन और प्रसाद वितरण भी होना चाहिए। जिस दिन पर्व मनाया जाय उस दिन पर्व के अनुरूप ही असन और वसन का भी यथाशक्ति प्रबन्ध होना चाहिए। पर्व मनाना प्रारम्भ करते समय एक बात पर ध्यान देना चाहिए। जिस स्थान से इस पर्व की उत्पत्ति हुई उस स्थान का भौगोलिक ज्ञान भी देना चाहिए। भाषण कविता और प्रहसन आदि को उपस्थित करते समय मंच पर उस देश का मानचित्र भी रहना चाहिए। और समय समय पर मानचित्र का प्रयोग कर भौगोलिक ज्ञान भी उपलब्ध करना चाहिए।

पर्व, तिथि का ज्ञान करने के लिए तत्कालीन राजनैतिक सामाजिक, तथा आर्थिक अवस्थाओं पर प्रकाश डालना चाहिए और उन अवस्थाओं के पार्श्व में भूतभूत स्थिति की खोज करनी चाहिए और पर्व द्वारा उस समय की ऐतिहासिक अवस्था पर किस प्रकार प्रभाव डाला गया उस पर भी विचार विनिमय कर लेना चाहिए। इस प्रकार ऐतिहासिक ज्ञान की भी उपलब्धि कर लेनी चाहिए।

पर्व मनाने के बाद सिंहावलोकन करना चाहिए और पर्व की महत्ता के अनुसार आगे भी कुछ दिनों तक चर्चाएँ होनी चाहिए। सिंहावलोकन करते समय हमने किस प्रकार पर्व मनाया, आर्थिक संयोजन किस प्रकार किया गया, त्रुटियाँ क्या रह गयीं सफलताएँ हमने कहाँ तक प्राप्त कीं, त्रुटियों का निवारण किस प्रकार होना चाहिए, आदि बातों का भी निर्णय कर लेना चाहिए। जो भी हो शैक्षणिक तथा सुधार की दृष्टि से, छिद्रान्वेषण की दृष्टि से नहीं जो भी हो सदभावना तथा सौहार्द्र के साथ प्रेम और मिलाप के साथ, सहयोग और आमोद के साथ, उसमें कटुता तथा तीक्ष्णता नहीं आनी चाहिए। चर्चाओं को लेखबद्ध कर देना चाहिए। विद्यार्थियों से उन चीजों के सम्बन्ध में कतिपय प्रश्न पूछना चाहिए और प्रश्नोत्तर के उपरान्त ही उनके ग्रहण करने की शक्ति की जाँच करनी चाहिए। इस प्रकार तो हुआ उनका बौद्धिक विकास।

यह भी देखना चाहिए कि अमुक प्रकार से कितने प्रकार की शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं और उन शिक्षाओं को विद्यार्थी कहाँ तक ग्रहण कर अपने जीवन में

उतारते हैं। विद्यार्थियों से प्रश्न द्वारा उन शिक्षाओं को निकालना चाहिए। उन्हें श्यामपट पर अंकित कर देना चाहिए और विद्यार्थी भी अपनी वहियों में नोट कर लें। शिक्षक भी उन शिक्षाओं को व्यवहार में ले आवें और उन्हें व्यवहार में ले आने का सुगम मार्ग उन विद्यार्थियों को बतला दें। संयम सेवा और त्याग, को उस व्यक्ति ने जिस व्यक्ति का पर्व मनाया गया, अपने जीवन में किस प्रकार उतारा था और हम किस प्रकार उतार सकते हैं इस पर प्रकाश डालना चाहिए और सबके अन्त में उन शिक्षाओं को जीवन में उतारने का संकल्प भी विद्यार्थी से लेना चाहिए। और इस प्रकार होगा उनके हृदय का विकास। शिक्षक भी ध्यानपूर्वक यह देखता रहे कि विद्यार्थी अपने संकल्पों पर कहाँ तक दृढ़ है और समय-समय पर उन संकल्पों में बल प्रदान करता रहे।

संयमों और नियमों का पालन करेंगे। अशन और वसन पर नियन्त्रण रखेंगे। व्यवहारों का सुधार करेंगे। सफाई करेंगे। और इस प्रकार होगा हमारे शरीर का सन्तुलित विकास।

पर्व दिन के बाद एक सप्ताह तक (पर्व की महत्ता के अनुरूप कम दिनों तक या अधिक दिनों तक) इस पर चर्चाएँ चलनी चाहिए।

अपनी शिक्षण संस्थाओं में हम पर्वों को मनाकर बाहु, हृदय तथा मस्तिष्क का विकास कर सकते हैं तथा सुन्दर चरित्र का निर्माण कर सकते हैं।

पर्व मनाने के लिए एक बात और यह है कि जिस दिन से हमने उद्योग प्रारम्भ किया उस दिन से लेकर उस दिन तक, जिस दिन हमने पर्व सम्पन्न किया अन्तिम चर्चा की सभी गतिविधियों, सभी तथ्य तथा निष्कर्षों, सभी चर्चाओं, सभी शिक्षाओं, सभी प्रहसन रूपक, भाषण तथा कविताओं आदि को लेखबद्ध करके पुस्तक के रूप में लाकर जिल्द बाँध देना चाहिए और उसे स्कूल पुस्तकालय में सुरक्षित रखना चाहिए जिससे समय-समय पर उसका चिन्तन और मनन हो सके आगे पढ़ने के लिए जो पढ़ना सीढ़ी के रूप में काम दे सके और दूसरे वर्ष पुनः उस पर्व को मनाने के समय वे लिखित प्रतियाँ सहायिका के रूप में सिद्ध हों। एक बात पर ध्यान देना चाहिए। हम पुस्तक में उन सभी व्यक्तियों की रचनाओं तथा कलाओं को बिना उनकी त्रुटियों पर ध्यान दिये स्थान देना चाहिए जिन लोगों ने उस पर्व के आयोजन में भाग लिया हो। इससे लाभ ही होगा हानि नहीं। सम्पादक जी टिप्पणी में उन

व्यक्तियों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन किया करें जिन लोगों ने आयोजन में भाग लिया, किन्तु अपनी रचनाओं तथा इच्छाओं का समर्पण नहीं किया। उन सभी व्यक्तियों का नाम और उल्लेख सधन्यवाद होना चाहिए। आर्थिक प्रतिवेदन की पूरी रिपोर्ट भी उस पुस्तिका में सन्निहित रहे और इसके बाद सम्पादक का स्वतन्त्र विचार हो और उस विचार में आलोचना तथा मार्ग-प्रदर्शन और सुधार का क्षेत्र सन्निहित हो।

समय समय पर जब स्कूल निरीक्षण हो तो निरीक्षक महोदय उन लिखित प्रतियों का अवलोकन करें, उन प्रतियों के द्वारा यह देखें कि यह स्कूल प्रगति कर रहा है तो किस मात्रा में और उसे अपने निरीक्षण प्रतिवेदन में अंकित करें।

४—पर्वों का विभाजन

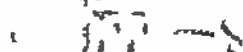
सामाजिक उत्सव, राजनैतिक उत्सव, सांस्कृतिक तथा धार्मिक उत्सव

विविधता हमारे यहाँ का भूषण है। हम अनेकता में एकता देखते हैं और अनेकता को बनाए रखने में ही सहिष्णुता का विकास पाते हैं। जिस प्रकार हमारा समाज विविध है उसी प्रकार हमारा जीवन भी विविध है और उस जीवन को सबल प्रदान करनेवाले पर्व भी विविध हैं और उन पर्वों से विविध प्रकार की शिक्षाएँ ग्रहण कर हम अपना सर्वतोमुखी विकास करते हैं। प्राचीन काल में जो राजनैतिक पर्व थे आज वे धार्मिक या सामाजिक पर्व हो गए हैं। और आज के युग में अनेक प्रकार के राजनैतिक घटनाओं के कारण अनेक राजनैतिक पर्वों का उद्भव हो रहा है। ऋतु की विभिन्नता के कारण हमारे समाज में अनेक प्रकार के ऋतु सम्बन्धी पर्व भी आ गए हैं और उन सभी पर्वों का अपना धार्मिक महत्त्व है। वे सभी मिलजुल कर मनुष्य को पूर्णता की ओर ले चलते हैं। पर्वों को मनाने में हम अपने दैनिक जीवन से मुक्त हो जाते हैं और एक उल्लासमय वातावरण में पहुँच कर संसार के दुःख-दारिद्र्य से दूर हट जाते हैं और थोड़ी देर के लिए हम अपने को भूल कर ब्रह्मानन्द के समीप पहुँचते हैं और फिर नए उत्साह और नई दिशा के साथ अपने कार्य में जुटते हैं। पर्वों को मना कर हम अपना सर्वतोमुखी विकास करते हैं और सांसारिक विघ्नों या विमुखता को उन्नतियों का सिद्ध करना चाहते हैं।

राजनैतिक संग्राम में मुख्य-मुख्य घटनाओं की तिथियों को हम पर्व के रूप में मनाते हैं तथा राजनैतिक नेताओं की वर्षगाँठों तथा पुण्य तिथियों को हम पर्व के रूप में मानते हैं और ये हैं हमारे राजनैतिक पर्व।

विजयादशमी, दीपावली तथा होलीकोत्सव तथा उन सभी धार्मिक नेताओं की जन्म तिथियों तथा पुण्य तिथियों को हम पर्व के रूप में मानते हैं जिन्होंने हमारे समाज में सामाजिक क्रान्तियों का सूत्रपात कर समाज को आगे बढ़ाया। जैसे महात्मा बुद्ध, महावीर, ईसा मसीह, रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द आदि की जन्म तिथियाँ तथा पुण्य तिथियाँ। इन्हें ही हम धार्मिक तथा सामाजिक पर्व त्योहार कहते हैं। ऋतु परिवर्तन के अनुसार मकर

सक्रान्ति गगा दशहरा वसत पचमी आदि पर्वों को हम ऋतुओ के अनुसार मनाते हैं और उनसे शिक्षा प्राप्त करते हैं। इन सभी को हम ऋतु सम्बन्धी या सास्कृतिक पर्व कहते हैं।



पर्वों का विभाजन हम लिंगो तथा वर्णो के आधार पर भी कर सकते हैं। बहुत से ऐसे पर्व हैं जिन्हे महिलाएँ विशेष रूप से मनाती है और उसी प्रकार बहुत से पर्व हैं जिन्हे पुरुष विशेष रूप से मनाते है। उसी प्रकार जैसे तीज, भ्रातृ द्वितीया, राखी, छठव्रत जिवित्पुत्रिका आदि पर्वों को स्त्रिया विशेष रूप से मनाती हैं। उसी प्रकार विजयादशमी, नागपचमी आदि को पुरुष विशेष रूप से मानते हैं।

बहुत ऐसे पर्व होते है जिन्हें बालको का पर्व कहते हैं और बालक तथा विद्यार्थी उसे विशेष रूप से मनाते है जैसे वसत पचमी।

बहुत से ऐसे पर्व हैं जिन्हे कोई विशेष वर्ग विशेष रूप से मनाता है। जैसे दीपोत्सव, श्रेष्ठियो का पर्व और इसी प्रकार श्रावणी ब्राह्मणो का, विजयादशमी क्षत्रियो का तथा होलिकोत्सव शूद्रो का पर्व है।

धर्मों के आधार पर भी कुछ पर्व कुछ धर्म के हैं और कुछ पर्व कुछ धर्म के। जैसे इदुलफित्तर तथा मुहर्रम मुसलमानो के, विजयादशमी तथा दीपोत्सव हिन्दुओ तथा क्रिसमस ईसाइयो के।

स्थानीय तथा राष्ट्रीय आधार पर भी पर्वों का विभाजन हो सकता है। कुछ पर्वों को मनाने की सीमा सीमित है तथा कुछ पर्वों का मनाने की सीमा बृहद् है, जैसे छठ आदि पर्व बिहार के कतिपय स्थान पर मनाये जाते हैं तथा विजयादशमी सारे भारतवर्ष मे स्कूलो मे। जब हम पर्व मानते हैं तो हमको इस बात पर दृष्टि रखनी चाहिए और विशेष रूप से सामाजिक तथा धार्मिक पर्वों मे—कि कोई ऐसी बात न हो जिसमे किसी की भी धार्मिक भावना पर चोट पहुँचे। हम उन पर्वों का भी मनावें जो सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से भिन्न हो, और इस प्रकार सहिष्णुता का पाठ सीखें। इन पर्वों की उत्तम बातो को बिना किसी पूर्वाग्रह के उन्मुक्त मस्तिष्क से ग्रहण करें। कहने का तात्पर्य यह है कि विद्यालयो मे हम पर्व त्योहारों को सम्यक भाव से सम्यक आचरण द्वारा सम्यक तथा व्यावहारिक शिक्षा के लिए सम्यक ढग से मनायें।

हमने ऊपर दिखलाया है कि कितने प्रकार के पर्व हमारे यहाँ हैं और उन्हें किस प्रकार विद्यालयों में मनाना चाहिए। अब आगे हम प्रत्येक प्रकार के पर्वों को लेंगे, पर्वों से सम्बद्ध विशेष बातों को बतलायेंगे और उस सम्बन्ध की अगर कोई विशेष बात होगी तो उस पर भी प्रकाश डालेंगे।

पर्वों पर प्रकाश डालते समय हम सत्र के आरम्भ से लेकर सत्र के अन्त तक चलेंगे और बीच बीच में पड़नेवाले पर्वों पर प्रकाश डालते चलेंगे। हमारा यही क्रम रहेगा जिससे विद्यालयों में पर्व मनाने में सुविधा हो।

१—नव वर्ष

हमारे यहाँ सत्र प्राचीनकाल म श्रावण की सप्तमी से प्रारम्भ होता था और हम उसे श्रावणी पूजा कहते थे। विद्यार्थी गुरुकुल म आते थे और नाम लिखाते थे। गहस्थी के सारे काम समाप्तप्राय हो जाते थे। इसलिए गहस्थ भी गुरुकुल म चतुर्मास व्यतीत करते थे और इस प्रकार अपनी भूली हुई विद्याओं का पुन सस्कार करते थे। परतु अब स्कूल के सत्र उस दिन से प्रारम्भ नहीं होते और न चैत मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से ही नया साल प्रारम्भ होता है जिस दिन पौराणिक प्रथा के अनुसार सष्टि का प्रारम्भ हुआ था। अब हम साल के नए दिन को अग्रेजी महीनों के अनुसार मनाते हैं और जनवरी के पहले दिन से साल का प्रारम्भ होता है और उसी दिन साल का पहला दिन होता है।

विधान—स्कूल को वदनवार और पताकाओं से सजाना चाहिए। मुख्य द्वार पर केले का पेड गाड कर मिट्टी म जल भर देना चाहिए। कुलपति की पूजा होनी चाहिए और सगीत तथा वाद्य का आयोजन होना चाहिए। *विशेष प्रकार का सुरुचिकर तथा पौष्टिक भोजन करना चाहिए।*

अगरेजी पद्धति के अनुसार नववर्ष का प्रथम दिन जनवरी महीने की पहली तिथि को ही माना गया है। यद्यपि इस दिन राज्यस्तर पर सरकारी छुट्टी रहती है और प्राय विद्यालय आदि बन्द रहते हैं। फिर भी आवासीय विद्यालयों के छात्र तथा छात्रावास के छात्र पहली तिथि को भी उत्सव मना सकते हैं। या तो विद्यालयादि २ जनवरी को प्राय खुल जाते है और सभी लोग अपने-अपने काम पर जुट जाते हैं।

नववर्ष के दिन—नववर्ष सुखमय व्यतीत हो इसके लिए प्रत्येक छात्र को अपने साथियों के प्रति नववर्ष की शुभकामनाए प्रकट करनी चाहिए। उस दिन सबसे हृदय खोलकर बातें करनी चाहिए। एक-दूसरे के प्रति मगल-कामना की भावना रखनी चाहिए। किसी के हृदय पर बातचीत से या कटु व्यवहार से चोट नहीं पहुचानी चाहिए। गुरुजनों के प्रति श्रद्धा के साथ अभिवादन के हाथ उठाने चाहिए। उनसे भी छात्रों को आशीर्वचन प्राप्त करना चाहिए। परिवार के बच्चे, माता पिता एव अन्य बडे लोगों के साथ मृदुल व्यवहार रखना चाहिए। इससे छात्रों की शिष्टता प्रकट होती है।

पुरानी मान्यताएँ—नववर्षोत्सव चाहे जिस रूप म, जिस तिथि को, जिस महीने म मनाया जाय, लेकिन सबो का एक ही उद्देश्य रहता है कि वर्ष का प्रथम दिन अगर आनन्द पूवक बीत गया, तो फिर वर्ष के सारे दिन आनन्द पूर्ण बीतेंगे। यही हमारे यहाँ की संस्कृति की परम्परागत मान्यताएँ रही हैं। अँगरेज लोग भी प्राय इसी को मानते हैं। सचमुच वर्ष का प्रथम दिन बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। हम उसकी महत्ता को ठुकरा नहीं सकते। हमारे पूर्वजों ने भी किसी-न किसी रूप म इसको मान्यता दी है। भले ही उसके विधान तथा मनाने के ढंग की प्रक्रिया विभिन्न ढंग की हो।

शिक्षकों का कर्त्तव्य—विद्यालय के शिक्षकों का भी कर्त्तव्य है कि वे अपने वर्ग के छात्रों को नववर्षोत्सव के अवसर पर अपने विचारों से उन्हें अवगत करायें और उसकी विशेष प्रक्रियाओं को समझाएं। जिससे यह दिन छात्रों के दैनिक जीवन म एक प्रेरणा-स्रोत का काम करता रहे।

---

२३ जनवरी : सुभाष जयन्ती

भौगोलिक अवस्था—बिहार राज्य से सटे दक्षिण में उड़ीसा राज्य है। पहले बिहार और उड़ीसा दोनों प्रांत संयुक्त थे। उड़ीसा की राजधानी कटक है। कटक महानदी के तट पर बसा हुआ है। इस कटक शहर में रायबहादुर जानकी नाथ बोस रहते थे। इन्हीं के पुत्र श्री सुभाष चन्द्र बोस थे, जिनका जन्म १८९७ ई० को २३ जनवरी को हुआ था।

राजनीतिक अवस्था—जिस समय सुभाष बाबू का जन्म हुआ था, उस समय देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म १८८५ ई० में हो चुका था। देश में थोड़ी बहुत राजनीतिक चेतना आ रही थी।

जीवन वृत्त—बाल्यकाल से ही सुभाष विचित्र स्वभाव के थे। उनके पिता जानकी नाथ बोस कटक की नगरपालिका तथा जिला परिषद् के प्रधान एवं नगर के मेधावी और गण्यमान्य वकीलों में थे। सुभाष बाबू की माता का नाम प्रभावती बोस था। वह कट्टर धार्मिक विचारों में विश्वास रखने वाली सरल सहृदय स्वभाव की सीधी सादी महिला थी। सुभाष बाबू की पाँच बहनें और छः भाई और थे। इनमें से सभी भाइयों ने अपने-अपने क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की। सुभाष को उनकी माँ 'सुबी' कहकर पुकारती थी।

प्रारम्भिक शिक्षा—सुभाष की प्रारम्भिक शिक्षा एक यूरोपियन स्कूल में हुई। इस स्कूल के प्रोटेस्टेंट वातावरण का बालक सुभाष के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा। धर्म के नाम पर जो ढोंग और दिखावा चलता है उसमें सुभाष की आस्था कभी नहीं रही यद्यपि वह स्वयं प्रकृति से धार्मिक व्यक्ति थे। जीवन भर उन्होंने ब्रह्मचर्य का पालन किया। स्कूल में प्रथम वर्ग में प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्ण होकर वह कलकत्ता पहुँचे। सन १९१३ ई० में उन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कालेज में नाम लिखाया। इस कालेज में उनकी पढ़ाई अधिक दिन नहीं चली क्योंकि एकाएक उनका मन आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की ओर चला गया। उन्होंने सोचा कि वह भी स्वामी विवेकानन्द के समान आध्यात्मिक शक्ति उपलब्ध करके विश्व में एक चमत्कार प्रदर्शित

करेंगे। इन्हीं विचारों के भाव प्रवाह में डूबकर वह सोलह-सत्रह वर्ष की आयु में ही बिना किसी को सूचित किये हिमालय की ओर गुरु की खोज में चल दिये। कहते हैं इस मौन-स्थान से उन्हें गुरु तो नहीं मिला किन्तु स्वामी विवेकानन्द का सान्निध्य अवश्य प्राप्त हुआ, जिससे रामकृष्ण मिशन के बारे में कुछ ज्ञान उन्हें मिला।

छः महीने तक बेकार घूमने के बाद जब सच्चे गुरु के दर्शन न हुए और न कोई गुरु ही मिला, तब सुभाष किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अपने घर लौट आये। वे अपनी माँ के चरणों में पड़ गये। अविरल अश्रुधारा बहाती हुई माँ ने बेटे को गले लगाकर कहा— सुभी! तूने तो मुझे मार ही डाला था।"

सुभाष बाबू पर जोर डाला गया कि वह इंग्लैण्ड जाकर आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर आयें। सुभाष बाबू के न चाहने पर भी यह करना पड़ा। अगस्त १९२० ई० में आपने आई० सी० एस० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये। परीक्षा पास करने पर उन्होंने घर पर एक पत्र लिखा— सुभाष दा मैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया हूँ। परन्तु मैं अफसर बनूँगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। मुझे लगता है कि मैं अपने देश और ब्रिटिश साम्राज्य दोनों की सेवा एक साथ नहीं कर सकता। शीघ्र ही मुझे इन दोनों में से एक को चुनना होगा। और सुभाष ने सुखमय विलास के जीवन को ठुकरा कर देशसेवा का कठिन मार्ग अपनाया और त्यागपत्र लिखकर भारत सचिव को देकर भारत लौट आये। बम्बई आते ही आपने उसी शाम को (१६ जुलाई, १९२१ ई०) मणिभवन में महात्मा गांधी से मिले और लगभग एक घंटे तक उनसे राजनीतिक बातचीत की। वार्तालाप के दौरान में ही कुरुक्षेत्र के कृष्ण के पुजारी सुभाष ने बापू से कहा था—

असहयोग तो मेरी समझ में आता है, लेकिन यह अहिंसा क्या है?

अहिंसा के प्रश्न पर ही गांधी जी से उनका सदा मतभेद रहा। वह राजनीति में अहिंसा को कोई स्थान मानने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने देशबन्धु चित्तरंजन दास को अपना राजनीतिक गुरु बनाया। सुभाष से प्रभावित होकर दास बाबू ने उन्हें 'नेशनल कॉलेज ऑफ कलकत्ता' का प्रिंसिपल बना दिया। यह याद रखने की आवश्यकता है कि यह कॉलेज उन विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए खोला गया था जिन्हें असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के कारण सरकारी शिक्षालयों से निकाल दिया गया था।

सार्वजनिक जीवन मे—सुभाष बाबू को सार्वजनिक आदोलन में भाग लेने का पहला अवसर तब मिला जब २५ दिसम्बर, १९२१ ई० को प्रिन्स आफ वेल्स कलकत्ता आये। सारे देश में एक स्वर से उनके स्वागत का विरोध किया गया था। कलकत्ते में इस विरोध प्रदर्शन का नेतृत्व दास बाबू और सुभाष बाबू ने किया। इस प्रदर्शन के अभियोग मे सुभाष बाबू को छ महीने की कैद की सजा मिली। यह आपकी प्रथम जेल-यात्रा थी।

३३ वर्ष की उम्र में सुभाष बाबू कलकत्ता के मेयर और सन १९३८ ई० में काग्रेस के अध्यक्ष चुन गये। पुन १९३९ ई० में महात्मा गांधी के विरोध के बावजूद वे काग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। परन्तु कुछ समय के बाद काग्रेस से सिद्धात मे मतभेद हो जाने के कारण आपने काग्रेस छोडकर नया दल 'फारवर्ड ब्लाक' की स्थापना की।

आजाद हिन्द फौज और सुभाषचन्द्र बोस—भारतीय सुरक्षा अधिनियम के अनुसार जुलाई १९४० ई० में सुभाष बाबू को गिरफ्तार करके कारावास में बन्द कर दिया गया। परन्तु वहाँ अस्वस्थ हो जाने के कारण बाद मे उन्हें घर पर नजरबन्द रखा गया। २६ जनवरी १९४१ ई० को नेताजी एक अनोखे ढग से वहाँ से निकल पडे और विभिन्न देशो मे उत्तरी भारत अफगानिस्तान, रूस तथा जर्मनी का भ्रमण करते रहे। जुलाई १९४३ ई० में उन्होंने दक्षिण-पूर्वी एशिया में साठ हजार भारतीय सैनिकों से सगठित आजाद हिन्द फौज के नेतृत्व का भार अपने हाथों में लिया जिसका सगठन भी रास बिहारी बोस ने सितम्बर, १९४१ में किया था। यह फौज रास बिहारी बोस का भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के सहायतार्थ मिली थी। इसमें वे सैनिक थे जिन्हे जापानियों ने अंग्रेजो को हराकर बंदी बना लिया था। सेना सचालन के अनुभवी न होने पर भी सुभाष बाबू ने अपने अपूर्व व्यक्तित्व सगठन-क्षमता तथा जोश पैदा करने वाले हृदय वेधी भाषणो के बल पर आजाद हिन्द फौज को और भी प्रवीण बना डाला। इसका परिणाम यह हुआ कि आजाद हिन्द फौज ने निर्भय तथा दृढ होकर कठिन-से-कठिन युद्ध का भी सामना किया। बर्मा की लडाई में आजाद हिन्द फौज ने सुभाष बाबू के नेतृत्व में अपनी वीरता का परिचय दिया और तत्पश्चात कुछ समय के लिए यह सेना आसाम तक पहुँच गयी। इस फौज ने कुछ समय तक मणिपुर और ऐनवपुर में कार्य किया। परन्तु रसद अस्त्र शस्त्र पराजित जापानियों की सहायता इत्यादि के अभाव के कारण आजाद हिन्द फौज को मित्र राष्ट्रो के सामने अपनी हार कबूल करनी पडी।

कुछ लोगों का कथन है कि जापान के आत्म-समर्पण (१४ अगस्त, १९४५ ई०) के कुछ समय उपरान्त ही हाँगकाँग के पास हवाई-दुर्घटना के कारण सुभाष बाबू की मृत्यु हो गयी।

प्रश्न

(१) सुभाष बाबू का जन्म कब और किस परिस्थिति में हुआ?
(२) सुभाष बाबू ने कहाँ तक शिक्षा पाई थी?
(३) उन्होंने अंग्रेजी सरकार की नौकरी क्यों न की?
(४) सुभाष बाबू सार्वजनिक जीवन में कब आये?
(५) गांधी जी से उनका मतभेद किस लिए हुआ?
(६) सुभाष बाबू ने देश की स्वतन्त्रता के लिए क्या किया?
(७) सुभाष बाबू के कार्यों से क्या शिक्षा मिलती है?
(८) नेताजी के जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डालिये।

२६ जनवरी

भारत म ब्रिटिश राज्य की काली काली घटाए छा चुकी थी। स्वतन्त्रता की माग थी। सदियो की गुलामी की बेडिया जो वास्तव मे १५ अगस्त, '४७ को टूटी और भारत अगरेजी शासन स मुक्त हुआ। लेकिन हम गणतन्त्र दिवस २६ जनवरी को मनाते है। २६ जनवरी के पीछे वास्तव म भारतीय स्वतन्त्रता का एक करुण इतिहास छिपा हुआ है। यह हमारे त्याग हमारे उत्सग, हमारी शहादत का सवेदनापूर्ण इतिहास है। उसका कारण जानने के लिए भारतीय स्वाधीनता सग्राम के इतिहास पर एक दृष्टिपात करना होगा।

२६ जनवरी खुशी का दिन है। उस दिन वर्षों की तपस्या पूरी हुई। उस दिन करोडो की आशाए पूरी हुई। सदियो के बाद भारत की सारी जजीरें कट गई। जिस दिन के लिए हजारो भारतीय हसते-हसते फासी के तख्ते पर झूल गए, डडा का मार खाई परन्तु उफ तक नही की, जिस दिन की प्रतीक्षा म लाखो जेल म सड गए, वही दिन है २६ जनवरी।

भारतीय स्वतन्त्रता के सग्राम का श्रीगणेश यो तो १८५७ ई० से ही हो गया, पर काग्रेस की स्थापना स भारत म महात्मा गाधी के नेतृत्व म अहिसात्मक सग्राम फिर शुरू हो गया। जन जन देश म जागरण आया। सुषुप्त जनता ने फिर स अगडाई ली।

१८८५ ई० म जब काग्रेस की स्थापना हुई उस समय यह एक सामाजिक सस्था मात्र थी। जब कलकत्ते के काग्रेस का २२वाँ अधिवेशन दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता म हुआ तो उस सस्था म सवप्रथम राष्ट्रीयता की भावना आई और विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार काग्रेस म राजनीति का प्रवेश हुआ और यह राजनीतिक सस्था बन गई। धीरे धीरे इसने प्रगति की ओर औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की। यह माँग १९२९ ई० तक चलती रही।

१९२८ ई० म काग्रेस का महत्त्वपूर्ण अधिवेशन पडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता म कलकत्ता म हुआ। उस अधिवेशन म इस प्रश्न पर विचार किया गया कि सवदलीय काग्रेस द्वारा प्रस्तुत नेहरू रिपोट के अनुसार औपनिवेशिक स्वराज्य को अथवा पूर्ण स्वाधीनता को ध्येय बनाया जाए।

श्री सुभाषचन्द्र बोस तथा पंडित जवाहरलाल नेहरू आदि नवयुवक नेता पूर्ण स्वाधीनता के पक्ष में थे। लेकिन कांग्रेस के वयोवृद्ध नेतागण औपनिवेशिक स्वराज्य तक ही अपनी माँग सीमित रखना चाहते थे। अन्त में महात्मा गाँधी ने दोनों दलों में समझौता कराया और सर्वसम्मति से औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की अवधि ३१ दिसम्बर १९२९ तक रखी गई।

इस घोषणा से घबड़ाकर ब्रिटिश सरकार ने १ नवम्बर १९२९ को घोषणा की कि भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देना अंग्रेजी शासन का लक्ष्य है। और इसके लिए भारतीय नेताओं का एक गोलमेज कान्फ्रेंस (Round table Conference) आगामी अप्रैल तथा मई माह में होगा। लेकिन इस घोषणा से किसी को संतोष नहीं हुआ और लाहौर-कांग्रेस ने रावी के पुनीत तट पर प० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में यह घोषणा प्रसारित की—

'यदि ब्रिटिश सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहे तो ३१ दिसम्बर, १९२९ के १२ बजे रात तक अर्थात् १ली जनवरी १९३० से लागू होने की प्रथम घोषणा करे अन्यथा १ली जनवरी १९३० से हमारी माँग पूर्ण स्वाधीनता होगी।

इसी पूर्ण स्वाधीनता की माँग के समर्थन में २६ जनवरी १९३० को रविवार के दिन सारे भारत में राष्ट्रीय झंडे के नीचे जुलूस निकाला गया, सभाएँ की गयीं और प्रस्ताव पास करके प्रतिज्ञाएँ की गयीं कि जब तक हम पूर्ण स्वाधीन न होंगे तब तक हमारा स्वतन्त्रता-संग्राम चलता रहेगा। लाठियों, डण्डों, तोपों, पिस्तौलों और बन्दूकों से सजी हुई फौजों और पुलिस से घिरे रहने पर हमने प्रतिवर्ष इस स्वतन्त्रता दिवस को अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता के संकल्प को दुहराते हुए मनाया और इस दिवस को मनाने में अनेक सपूतों ने स्वतन्त्रता की वेदी पर हँस-हँसकर रक्त-अर्पण किया। और १९३० से प्रति वर्ष हम २६ जनवरी को राष्ट्रीय पर्व के रूप में मनाते आ रहे हैं।

१५ अगस्त, १९४७ को जब ब्रिटेन ने सत्ता भारतीयों को हस्तान्तरित की तब देश को औपनिवेशिक स्वराज्य मिला। ब्रिटेन का राजा भारत का सम्राट बना रहा। किन्तु २६ जनवरी, १९५० को भारत ने पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और गणतन्त्र राज्य बन गया। ब्रिटेन के राज्य का भारत के साथ पुराना सम्बन्ध टूट गया। भारत का सर्वोच्च शासक राष्ट्रपति के नाम से पुकारा जाने लगा और वह जनता द्वारा निर्वाचित विधायिका-सभा के सदस्यों

हम कितने सुख सपने लेकर इसको फहराते हैं।
इस झंडे पर मर मिटने की कसम सभी खाते हैं।
हिन्द देश का यह झंडा घर घर में लहरायगा।
ऊंचा सदा रहेगा॥

—रामदयाल पाण्डेय

इसके बाद मुख्य नारे लगाने चाहिए। पुन किसी व्यक्ति द्वारा इस झंडे का इतिहास और इस २६ जनवरी का इतिहास दुहराना चाहिए। अन्त में राष्ट्र गान (जन-गण मन) के साथ सभा विघटित करनी चाहिये।

राष्ट्र-गान

जन गण मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता।

पंजाब सिंध गुजरात मराठा द्राविड उत्कल बंगा।
विन्ध्य, हिमाचल यमुना गंगा उच्छल जलधि तरंगा।

तव शुभ नामे जागे
तव शुभ आशिष मांगे
गाए तव जय गाथा
जन गण मंगलदायक जय हे
भारत भाग्य विधाता!

जय हे जय हे, जय हे
जय, जय, जय, जय हे
भारत भाग्य विधाता!

इन सभी कार्यक्रमों के उपरान्त किसी जगह छाये में बैठकर कम-से-कम २ घंटे तक सूत्र-यज्ञ चलना चाहिए। फिर सूत्र-यज्ञ समाप्त होने पर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास को सभा के समक्ष रखना चाहिये और तब छुट्टी हो जानी चाहिए।

शाम के समय सूर्यास्त के बाद अर्द्ध चन्द्राकार अवस्था में सावधानी के *साथ खड़े होकर झंडे को नीचे उतारेंगे। झंडा उतारने के पूर्व झंडा नमस्कार* गान गाना चाहिये। सभी को अपने सिर को ढके रहना चाहिये।

अन्त में जन मन गन के साथ झंडे को सम्मान पूर्वक लपेट कर रख देना चाहिये।

शिक्षायें —उस दिन हमलोग अपनी पुरानी प्रतिज्ञाओं को दुहराते हैं। स्वतन्त्रता को सदा सादा बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं। देश के लिए सभी चीजों का उत्सर्ग करने के लिए तैयार रहते हैं। महापुरुषों के चरित्रों से प्रेरणा ग्रहण कर अपने को भी उसी तरह बनाने की चेष्टा करते हैं। इस अवसर पर दूसरे देशों के स्वतन्त्रता-संग्राम का भी तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए। हिंसक और अहिंसक संग्रामों का भी विवेचन होना चाहिये। अहिंसक ढंग के संग्राम की विशेषताओं पर भी प्रकाश डालना चाहिये।

प्रश्न

१ २६ जनवरी का भारतीय इतिहास में क्या महत्त्व है?
२ २६ जनवरी का क्या इतिहास है?
३ झंडे को किस प्रकार और कैसे फहराना चाहिये?
४ इस दिवस को मनाने की पूर्व तैयारी कैसे करोगे?
५ राष्ट्र-ध्वज फहराने का नियम क्या है?



२८ जनवरी

लाला लाजपत राय जयन्ती

पूर्व तैयारी —जयन्ती के दो दिन पूर्व ही इसकी सूचना सभी छात्रों एवं शिक्षकों को दे दी जायगी। जयन्ती के दिन सफाई होगी। छात्र एवं शिक्षक निकट के गांव में जाकर सफाई करेंगे। आज सूत्र-यज्ञ या कोई उत्पादक कार्य कुछ विशेष तौर पर होगा। वर्गों के वर्गाध्यापक लालाजी के बारे में कुछ खास बातें बतलायेंगे। अन्त में सभी की एक सम्मिलित गोष्ठी होगी। छात्र इसमें निबन्ध पढ़ेंगे, प्रहसन प्रस्तुत करेंगे। उनके संस्मरण कहेंगे और कविताएं पढ़ेंगे। सिक्खों के इतिहास पर भी प्रकाश डाला जायगा। लालाजी के जीवन से सम्बद्ध उस समय देश की राजनीतिक घटनाओं पर भी यत्र तत्र प्रकाश डाला जायगा। अन्ततोगत्वा प्रधानजी का भाषण होगा और बाद में गोष्ठी विघटित कर दी जायगी।

जन्म स्थान का परिचय —लालाजी का जन्म पंजाब में हुआ था। पंजाब देश के उत्तर पश्चिम के कोण पर है। पंजाब पांच नदियों से बना है। ये नदियाँ रावी, झेलम, सतलज, व्यास और चनाव हैं। इन्हीं नदियों के पांच पानी के कारण इनका नाम पंच+आब=पंजाब पड़ा। यहाँ वर्षा अत्यन्त कम होती है। किन्तु इन नदियों के मैदान में गेहूं बहुत पैदा होता है। पंजाब के लोगों का मुख्य भोजन गेहूं ही है। यहां के लोग बड़े ही हृष्ट-पुष्ट और बलवान होते हैं। यहाँ के निवासियों के अधिकाधिक सिक्ख धर्मावलम्बी हैं। आजकल पंजाब के दो हिस्से हो गए हैं। पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब। पूर्वी पंजाब भारत में है और पश्चिमी पंजाब पाकिस्तान में। पूर्वी पंजाब की राजधानी चंडीगढ़ है। पंजाब में अमृतसर में सिक्खों का स्वर्ण मंदिर बहुत ही विख्यात है। पंजाब में ऊन और कसीदाकारी का काम बहुत अधिक होता है।

देश की राजनीतिक हालत —देश परतन्त्रता के शिकंजे में जकड़ा था और स्वतन्त्रता सिर धुन धुन कर रो रही थी। देश का जर्रा-जर्रा गुलामी की दुहाई दे रहा था। सर्वत्र स्वतन्त्रता की मांग थी। सारा देश अंग्रेजों के शासन में चल रहा था। कोई उसे त्राण देने वाला न था। गोरे मनमाने

ढग स शासन कर रहे थे। चारों ओर अत्याचार का ही बोलबाला था। हिन्दुस्तानियों की कहीं पूछ न थी। लोग कहते भी तो सुनता कौन ? बड़े-बड़े लोग, राय बहादुर और सर की पदवी से फूल रहे थे। ऐसी असहायावस्था में देश के ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता महसूस हुई जो इन दुखिया के दुखड़ा को सुने और उन्हें सुगनि का सन्मार्ग दिखलावे जिस पर चलने से देश परतन्त्रता की बड़िया म न रह कर उन्मुक्त वातावरण स स्वतन्त्र रूप से विचरण करे। ऐसे ही समय में लाला लाजपत राय का इस भूमि पर पदार्पण हुआ।

जीवन वृत्त —लालाजी का जन्म २८ जनवरी, १८६५ ई० में ननिहाल में फिरोजपुर जिले के ढोडिग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम राधाकृष्ण था। उनके पिता एक सरकारी नौकर थे।

६ वर्ष की अवस्था में लालाजी ने स्कूल का प्रथम दर्शन किया। १८८० ई० में उन्होंने इन्ट्रेंस की परीक्षा पास की। बाद में उन्हें छात्र वृत्ति मिलने लगी और लाहौर में आकर गवनमेंट कालेज में एफ० ए० में अपना नाम लिखवाया। यहीं पर उन्होंने एफ० ए० की परीक्षा पास की। पिताजी की राय स उन्होंने मुख्तारी की परीक्षा भी दी। उसमें भी व सफल हुए।

लालाजी में सार्वजनिक सेवा करने की बड़ी तीव्र प्रवृत्ति थी। इस सार्वजनिक सेवा की ओर प्रवृत्त करने वालों में महर्षि दयानन्द का सबसे बड़ा हाथ था। इन्हीं से प्रभावित होकर उन्होंने आर्य समाज को ग्रहण किया और उसी स उनके हृदय में बोये हुए समाज-सेवा की बीज अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हुए।

एफ० ए० की परीक्षा के बाद उन्होंने वकालत की परीक्षा दी किन्तु असफल हो गए। अत अपने गाँव जगरॉव में मुख्तारी करने लगे। दूसरे वर्ष भी फेल कर गया अन्त में १८८५ ई० में वकालत की परीक्षा पास की। १८८६ ई० में उन्होंने हिसार म वकालत शुरु कर दी। वकालत म इन्हें पूरा सफलता मिली। वे एक प्रसिद्ध वकील हो गए। व झूठ लालाजी के मुकदमे को नहीं लेते थे।

स्वामी दयानन्द की मृत्यु के बाद १८८६ ई० में लाहौर में इन्होंने दयानन्द एंग्लो वैदिक (डी० ए० वी०) कालेज की स्थापना की।

सन १८८८ ई० के कांग्रेस-अधिवेशन में, जो इलाहाबाद में हुआ था, लालाजी पहली बार सम्मिलित हुए थे। उसमें इन्होंने कौंसिला को बढाये जाने के प्रस्ताव का समर्थन किया था और कहा था कि कौंसिला में लोगों की आवाज होनी चाहिये। अब लालाजी लोकप्रिय नवयुवक नेता बन गए। १९०५ ई० के बनारस में हुए कांग्रेस अधिवेशन में लालाजी एक प्रमुख वक्ता और राष्ट्रवादी के रूप में आए। १९०६ ई० में गोखले के साथ के शिष्ट मंडल में विलायत गए। वहां से लौटने पर लोगों ने कहा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आत्म निर्भरता अत्यन्त आवश्यक है। १९०६-७ ई० में उन्होंने किसानों की दशा की कड़ी आलोचना पंजाब सरकार से की। फलस्वरूप उन्हें देश निर्वासन का दण्ड भुगतना पड़ा।

इन्हीं दिनों गांधी जी द्वारा चलाए गए अफ्रीका के सत्याग्रह के लिए गोखले के साथ बहुत-सा धन इकट्ठा किया। अतः १९१४ ई० तक अमरिका में उन्हें निर्वासित जीवन बिताना पड़ा। १९१७ ई० में 'तरुण भारत' (Young India) नामक पुस्तक भी लिखी जिसे भारत सरकार ने जब्त कर लिया परन्तु अमेरीका और इंगलैण्ड में इस पुस्तक की बड़ी प्रसिद्धि हुई। बाद में उन्होंने 'England's debt to India' नाम की पुस्तक लिखी। १९२० ई० में उन्हें कांग्रेस विशेष अधिवेशन का सभापति चुना गया। उसमें असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव रखा गया और पंजाब में इसे कार्यान्वित करने का कार्यक्रम निर्धारित किया गया। इस अधिवेशन में लालाजी ने कहा था 'We desire to turn our Jaces away from Govt House and turn to the huts of the people' १९०५ ई० में कलकत्ता में हुए हिन्दू महासभा के अधिवेशन का सभापति निर्वाचित हुए थे। ये पक्के राष्ट्रवादी थे। देश के काम में वे कभी भी पीछे नहीं रहे। सन् १९२८ ई० में साइमन कमीशन लाहौर पहुँचा तो लालाजी ने विशेष प्रदर्शन का नेतृत्व किया। इसमें एक गोरे सर्जेण्ट ने इन पर लाठी प्रहार किया और इसी लाठी प्रहार से उनकी मृत्यु १७ नवम्बर, १९२८ ई० के ६॥ बजे सुबह में हो गई।

लालाजी को पंजाब केसरी कहा जाता था। वे बहुत ही ओजस्वी और गर्वीले भाषण देते थे। लालाजी पर जिस दिन लाठी प्रहार हुआ था उस दिन उन्होंने बड़ी जोशीली वक्तृता दी थी और कहा था "मेरे शरीर की लगी हुई एकता की चोट ब्रिटिश साम्राज्य के ताबूत के लिए एक-एक कील और कफन का एक-एक धागा होगा।" लाहौर से प्रकाशित होने वाली दैनिक पत्रिका

'वन्दे मातरम्" में उन्होंने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए 'मेरा मजहब हक परस्ती, मेरी मिल्लत कौम परस्ती, मेरी अदालत मेरा अन्तःकरण मेरी जायदाद, मेरी कलम"

लालाजी के सम्बन्ध में एक कवि ने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए थे—

मरद महान सत्यवान मे जो मानवान
रखना हमेशा ही जो भाव महामानी का
मानोन्नत अपार पर गुमान लवलेश न था—
शान की निराली था नमूना जिन्दगानी का
लाजपत रखना था लाजपत वारा की
करता हमेशा कामी' देशाभिमानी का—
हाय! हाय!! लुट गया दिनही दहाड़े वह
लाला पाँच पानी का मरद एक पानी का।

शिक्षाएँ —साहसी और निडर बनना चाहिये। बोलने की कला सीखनी चाहिये। देश के लिए यदि प्राणों की बली देनी पड़े तो पीछे मुख नहीं मोड़ना चाहिये। किसी भी काम में पीछे नहीं रहना चाहिये। सारे कामों को अच्छी तरह पूरा करना चाहिये। यदि किसी काम को सौंप देना चाहिये तो उसे अपना समझ कर करना चाहिये। सार्वजनिक सेवा सदा करनी चाहिये।

प्रश्न

१ लालाजी के समय में देश की राजनीतिक अवस्थाओं का वर्णन करो।
२ लालाजी का जीवन वृत्त प्रस्तुत करो।
३ साइमन कमीशन के बारे में क्या जानते हो?
४ यह किसलिए भारत में आया था और क्या यह सफल हुआ?
५ लालाजी के जीवन से कौन-कौन सी शिक्षाएं प्राप्त करते हो?

३० जनवरी—गाँधी पुण्य-तिथि

भौगोलिक अवस्था—महात्मा गाँधी का जन्म गुजरात के पोरबन्दर नामक स्थान में हुआ था। गुजरात के तीन तरफ समुद्र लहराता है और इसके एक ओर जमीन है। गाँधी जी के जन्म स्थान से कुछ ही दूरी पर समुद्र है। यहाँ कोई अधिक मात्रा में वर्षा नहीं होती। साथ ही किसी और चीज की भी अधिक पैदावार नहीं है। वहाँ की मुख्य पैदावार ज्वार और अरहर है।

राजनीतिक अवस्था—जिस समय गाँधी जी का जन्म हुआ था उस समय देश में आजादी की लहर फल चुकी थी। उस आजादी की लड़ाई में देश के बड़े-बड़े नेता सम्मिलित थे। देश में क्रान्तियाँ हो रही थीं लड़ाई हो रही थी। हिन्दू मुसलमान और काले गोरे, ऊँच-नीच और बड़े छोटे का प्रश्न था। इस समय देश को एक ऐसे व्यक्ति की अत्यन्त आवश्यकता थी जो इन सभी भेदों को एक कर सत्य-अहिंसा का मार्ग अपना कर देश को इन झगड़ों से और गुलामी से मुक्ति दिलाए। सबों के मन में यह धारणा बन गई थी कि देश को एक ऐसे ही व्यक्ति की जरूरत है। महात्मा बुद्ध को मरे हुए २५०० वर्ष से अधिक हो गए थे। उनके सत्य और अहिंसा की शिक्षा जो उपनिषद काल से प्रारम्भ हो पुन बुद्ध के समय में अधिक हो गई थी, इस समय धीमी पड़ गई थी और भारत ही नहीं बल्कि विश्व के सारे देश पथ-भ्रष्ट हो, ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में जल रहे थे। ऐसे ही अवसर पर १९०५ ई० में बंग भंग हुआ और देश में हिंसा और घृणा की लहर फैल गई। शासक भी अधर्म और शोषण तथा विग्रह विभाजन तथा कुशासन की नीति का पालन कर रहे थे और शासित भी हिंसा, घृणा, अराजकता और असत्य के मार्ग पर चल करके विषस्य विषमौषधम् के सिद्धान्त की पूर्ति कर रहे थे। भगवान श्री कृष्ण की ओजस्वी वाणी 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" तिरोहित-सी हो रही थी। उसी समय महात्मा गाँधी का पदार्पण भारतीय रंगमंच पर हुआ। इन्होंने यह बतलाना प्रारम्भ किया कि वैर का नाश प्रेम से होता है और हिंसा का नाश अहिंसा से होता है।

जीवन वृत्त—विश्व के इस देव विभूति ने २ अक्टूबर, १८६९ ई० को गुजरात के काठियावाड़ के पोरबन्दर नामक स्थान में वैश्य परिवार के आँगन

में विश्व का प्रथम दर्शन किया। पोरबन्दर का वह छोटा-सा घर चमक उठा। सारा परिवार कृत्य-कृत्य हो उठा। इनके पिताजी का नाम कर्मचन्द गांधी और माता का नाम पुतली बाई था। इनके पिताजी राजकोट रियासत के दीवान थे। बचपन में ही सत्य हरिश्चन्द्र नाटक देखने से इनपर हरिश्चन्द्र के गुणों का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा और ये उसी समय से परम सत्यवादी बन गए। १८८७ ई० में इन्होंने प्रवेशिका परीक्षा पास की। इंग्लैंड में इन्होंने 'इनरटेम्पुल' से बैरिस्टरी पास की और अपने देश में इसका अभ्यास शुरू किया। ये बड़े ही नाजुक स्वभाव के थे। अतः बैरिस्ट्री में ये सफल न हो सके। अतः येन केन प्रकारेण ये बैरिस्ट्री करते रहे। कुछ दिनों के पश्चात् उन्हें पोरबन्दर की एक व्यापारी संस्था 'अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी' के एक नए मुक-दमें में अफ्रिका जाना पड़ा। दक्षिणी अफ्रिका में गोरों के अत्याचार से भार-तीय पीड़ित थे। भारतीयों पर इन अत्याचारों को देखकर उनका दिल दहल उठा। उन्होंने वहाँ का कटु अनुभव प्राप्त किया। और वहाँ के भारतीयों को जगाने का सुदृढ़ संकल्प किया। वहाँ पर उन्होंने सर्वप्रथम अहिंसात्मक सत्याग्रह रूपी अमोघ अस्त्र का दर्शन किया और उसका प्रयोग राजनीतिक क्षेत्र में सामूहिक रूप से करना प्रारम्भ किया और वे इसको लेकर कूद पड़े राजनीति की भयंकर संघर्ष-ज्वाला में। १८९३ ई० से १९१४ ई० तक वे प्रवासी भारतीयों के लिए युद्ध करते रहे। १९१४ ई० में ये भारत लौट आए और यहाँ के निवासियों को नव जागरण का संदेश सुनाया। अहमदाबाद में इन्होंने एक साबरमती आश्रम की स्थापना की। चम्पारण में किसानों की रक्षा के लिए निलहे गोरों के अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह किया। इसमें इन्हें आशातीत और अभूतपूर्व सफलता मिली। सन् १९२१, १९३० १९४०, १९४२ के आन्दोलनों का नेतृत्व गांधी जी ने किया। अनेक बार इन्होंने जेल के सीकचों को नापा। जेल में इन्हें अपार कष्टों को झेलना पड़ा। लाठियों की मार पड़ी। किन्तु इन्होंने अपना मार्ग नहीं छोड़ा। अपने व्रत पर अटल रहे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश में साम्प्रदायिकता की प्रचंड ज्वाला भभक उठी। इससे महात्मा जी के दिल में बड़ा आघात पहुँचा। उन्होंने देश के विभिन्न भागों में पर्यटन कर उस भभकती ज्वाला को शान्त करने की चेष्टा की। किन्तु भारत के इस देदीप्यमान नक्षत्र का, ३० जनवरी, १९४८ को सन्ध्या समय ५ बजकर ४७ मिनट पर बिड़ला भवन के निकट प्रार्थना-सभा में एक पथ भ्रष्ट नाथूराम गोडसे ने साम्प्रदायिक उन्माद में आकर हत्या कर

सदा के लिए बुझा दिया। समुज्ज्वल चन्द्र अस्त हो गया जिसकी दुग्ध धवल, शीतल चाँदनी में सारा भारत विश्राम करने जा रहा था।' ठीक ही कहा गया है—

'ले डूबता है एक पापी नाव को मँझधार में।'

उसने भारत के सारे सुख सपना को जो सदियों के बाद साकार होने जा रहे थे, मिट्टी में मिला दिया। गाँधी जी की इस नृशंस हत्या पर सारा विश्व रो पड़ा और आगे आनेवाला युग ३० जनवरी को अश्रु मुक्ताओं के रूप में श्रद्धांजलि प्रदान कर सदियों तक पाप प्रक्षालन करता रहेगा।

गाँधी जी के नष्ट होने से केवल भारत को ही नहीं वरन सारे विश्व को गहरी क्षति हुई। ये एक तपे-तपाये नेता थे। मझधार में पड़ी भारत की डूबती उतराती नैया के ये खेवैया थे। ये उन्नतमना थे। ये अपने सिद्धान्त के बड़े पक्के थे। इनके रोम रोम से सादगी टपकती थी। जन सेवा करना ही इनके जीवन का सफल व्रत था। उनका आन्दोलन सदा सत्य और अहिंसा पर आधारित था, जो भारत की असहाय और निरीह जनता के लिए एक सफल और सबल रास्ता चलती हुई नाव की पाल की तरह था जो उन्हें निर्दिष्ट दिशा की ओर ले चलता था। ये जनता-जनार्दन के स्वरूप थे। ये साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर ध्यान देते थे। ये सत्य अहिंसा के प्रतीक थे। महात्मा गाँधी युग युग तक वन्दनीय, पूजनीय, अर्चनीय रहेंगे।

पूर्व तयारी —गाँधीजी की पुण्य तिथि के एक दिन पूर्व ही छात्रों और शिक्षकों की एक सम्मिलित गोष्ठी होनी चाहिये। इसमें ३० तारीख के होने वाले कार्यक्रमों को बनाकर सबों के बीच प्रचारित कर देना चाहिये।

प्रात काल प्रभात फेरी होनी चाहिये। पुनश्च सफाई का कार्यक्रम रखना चाहिये। पुनः सुबह से शाम तक बारी-बारी से १० व्यक्तियों की लगातार कताई चलनी चाहिये। शाम को एक गोष्ठी हो। उसमें छात्र, शिक्षक तथा समीपवर्ती ग्रामीण भी सम्मिलित हों। उसमें गाँधीजी के बारे में सभी अपने अपने विचार रखें। कुछ कविता पाठ हो, प्रहसन हो और निबंध आदि भी पढ़े जाएँ। जितने निबंध प्रहसन आदि पढ़े जाए उन सबों को हस्तबद्ध की पुस्तक का रूप देना चाहिये और पुस्तकालय में रख देना चाहिये। ३० जनवरी के तीन दिन पूर्व से ही अन्न, वस्तु का संग्रह करना चाहिये और ३० जनवरी को उन सबों को असहाय जनता के बीच वितरित

कर देना चाहिये। उसके बाद विद्यालय के प्रधानजी का भाषण हो और उसके उपरान्त छुट्टी हो जाए।

शिक्षायें —अपने सिद्धान्त पर अटल रहकर अपने भौतिक शरीर के बलिदान करने की शक्ति। महात्मा गाँधी द्वारा प्रयोग की गई सत्य अहिंसा के प्रयोग की शिक्षा इन शिक्षाओं के अलावे हमने यह सीखा कि घृणा से घृणा का नाश नहीं होता। घृणा का नाश प्रेम से होता है। बहुजन हिताय से सर्वजन हिताय की बात हमने सीखी। इसके उपरान्त गाँधीजी के जीवन के अन्य पहलुओं को भी देखा। उनके प्रयोगों से शिक्षा ग्रहण की।

प्रश्न

१ गाँधीजी के जन्म के पूर्व देश की राजनीतिक अवस्था क्या थी?
२ गाँधीजी के जीवन वृत्त को संक्षेप में प्रस्तुत करो।
३ गाँधीजी साम्प्रदायिकता को क्यों मिटाना चाहते थे और इसके लिए उन्होंने क्या किया?
४ गाँधीजी की मृत्यु कहाँ और कब हुई? किसने की?
५ गाँधीजी के दो रचनात्मक कार्यों पर प्रकाश डालो।
६ उनके जीवन से क्या शिक्षाएँ मिलती हैं?

२ फरवरी : मोतीलाल नेहरू पुण्य-तिथि

जन्म-स्थान की भौगोलिक अवस्था—प० मोतीलाल नेहरू का जन्म इलाहाबाद में हुआ था। यह उत्तर प्रदेश में है। इसके समीप ही गगा नदी बहती है। यहाँ गगा, यमुना और सरस्वती (लुप्त) आदि नदियाँ मिलती हैं। इसीलिए यह एक तीर्थस्थान है और सभी तीर्थों से बडा है। इसे तीर्थराज कहते हैं। यहाँ का कुम्भ मेला बडा प्रसिद्ध है। यहा साधारण वर्षा भी होती है। यहा की मुख्य पदावार गन्ना गेहू और चावल है। यहाँ पर शीशा, कसीदाकारी इत्यादि का काम होता है। यहा एक युनिवर्सिटी तथा उत्तर प्रदेश का हाईकोर्ट है। यहाँ गर्मी विशेष पडती है।

तत्कालीन राजनीतिक अवस्था—जिस समय पडितजी का जन्म हुआ था भारत में अँगरेजी राज्य का पूर्ण विस्तार हो चुका था। भारत गुलामी के शिकजे में अच्छी तरह फस गया था। देश के बडे-बडे नेता स्वतन्त्रता की लडाई में भाग ले रहे थे। किन्तु अँगरेजो की कूटनीति के कारण उनमें कोई अच्छा सगठन न हो सका। अत कही भी क्रान्ति हो तो अगरेजो द्वारा दबा दी जाती थी। इस अँगरेजी राज्य के काले बादल के घटाटोप अन्धकार में पडितजी का उदय हुआ।

आधुनिक भारत के निर्माताओ में पडित मोतीलाल नेहरू का नाम अग्रणी है। इन्होने देश के लिए अपना सब कुछ त्याग दिया। ये हमारे देश के महान् पुरुषो में से एक थे।

सक्षिप्त जीवन वृत्त—पडित मोतीलाल नेहरू का जन्म ६ मई १८६१ में हुआ था। इनके पिता का नाम गगाधर था। ये तीन भाई थे। मोतीलाल जी सबसे छोटे थे। पिता के तीन-तीन महीने मरने के उपरात इनकी पैदाइश हुई। ये एक अनोखे बालक थे। जहाँ पहुच जाते सबका ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो जाता। उनको देखकर लोग ऐसा कहा करते थे कि बडा होने पर यह देश का जरूर कुछ-न-कुछ होगा। सचमुच वे कुछ हुए और इस तरह कुछ हुए कि सारी दुनिया उन्हें देखकर दाँतो तले अँगुली दबा लेती थी। सचमुच में 'मोती' मोती थे। क्या नही, कहा भी तो गया है—

'होनहार बिरवान के होत चिकने पात।

ये बचपन से ही बड़े साहसी, निडर और दिलेर थे। पंडितजी इलाहाबाद में वकालत करते थे। इनकी वकालत खूब चली हुई थी। प्रारम्भ में ये अंगरेजों के समर्थक थे, किन्तु जलियाँवाला बाग के दिल दहलानेवाले हत्याकाण्ड से अंगरेजों से इनका मन उचट गया और वे भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की भभकती ज्वाला में कूद पड़े। अब वे देश के और काँग्रेस के कर्णधार हो गये। ये कई बार जेल गए और वहाँ की कठोर यातनाओं का सहन भी किया। देशबन्धु चित्तरंजन दास के साथ मिलकर इन्होंने स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। देशबन्धु दास की मृत्यु के बाद स्वराज्य पार्टी की अध्यक्षता इनके हाथों में आई और ये उसे अच्छी तरह निभाये। साइमन कमीशन का बहिष्कार भी इन्हीं के नेतृत्व में हुआ। सर्वदल सम्मेलन के वे अध्यक्ष भी चुने गए थे। उसकी रिपोर्ट पेश करते हुए इन्होंने औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की थी और उसके इस प्रस्ताव का सबल समर्थन भी किया था। १९२८ ई० में कलकत्ता अधिवेशन में इन्होंने काँग्रेस का अध्यक्ष-पद सुशोभित किया था और औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग की रिपोर्ट ही नेहरू-रिपोर्ट पुकारी जाने लगी।

आज पंडित मोतीलाल जी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। ये स्वराज्य की माँग के सबल समर्थकों में से एक थे। पंडित मोतीलाल जी एक अच्छे विद्वान् भी थे। यही कारण है कि देश के इने-गिने वकीलों में थे।

पूर्व तैयारी—पुण्य तिथि के एक दिन पहले ही छात्रों और शिक्षकों की एक सम्मिलित बैठक होनी चाहिए। इसमें अगले दिन के कार्यक्रमों पर विचार विमर्श होना चाहिए। पुनः सभा का कार्यक्रम सुना देना चाहिए।

दूसरे दिन सुबह में सफाई का विशेष कार्यक्रम होना चाहिए। इस दिन कम-से-कम एक घण्टा सूत-यज्ञ होना चाहिए। इसके उपरान्त सबों को बुला कर एक सभा होनी चाहिए। इसमें सब विनम्र हों। सभी अपने-अपने विचार प्रकट करें। लेख और कविताएँ पढ़ी जायें। प्रवचन दिए जायें। इन सभी लेखों, कविताओं और प्रवचनों को लिपिबद्ध कर पुस्तक का रूप दे देना चाहिए और पुस्तकालय में सुरक्षित रख देना चाहिए।

शिक्षाएँ—देश के लिए त्याग करना, निर्भीक और निडर बनना, दिलेर बनना और किसी भी काम को अच्छी तरह निभाने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

प्रश्न

१ मोतीलाल के समय की राजनीतिक हालत क्या थी ?
२ मोतीलाल के जीवनवृत्त की एक छोटी-सी झाकी प्रस्तुत करो।
३ उनके जीवन से क्या सीखते हो ?
४ नेहरू रिपोर्ट से क्या समझते हो ?
५ स्वराज्य पार्टी से क्या समझते हो ?
६ औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वराज्य में क्या अन्तर है ?
७ १९२८ ई० का कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन किन बातों के लिए प्रसिद्ध है ?
८ यदि यह कहा जाय कि जवाहर जवाहर नहीं बनते यदि मोतीलाल इनके लिए माग न प्रशस्त किया होता। तो कहा तक सत्य है इसे सिद्ध करो।
९ गांधीजी के असहयोग आन्दोलन में मोतीलाल की क्या देन रही ?

११ फरवरी—श्री जमनालाल बजाज पुण्य-तिथि

जन्मस्थान का भौगोलिक परिचय—श्रीयुत सेठ जमनालाल बजाज का जन्म जयपुर राज्य के काशीकाबास नामक स्थान में हुआ था। वह गाँव मरुभूमि में है। यहाँ जल की नितान्त कमी है। चारों ओर केवल बालू ही बालू नजर आते हैं। वर्षा नहीं ही होती। यहाँ का मुख्य जानवर ऊँट है। कोई खास चीज की पैदावार नहीं है।

सेठ जमनालाल जी का सेवाग्राम में स्थायी निवास था। यह पहाड़ी इलाका है। यहाँ साधारण वर्षा हो जाया करती है। यहाँ की मुख्य फसल ज्वार और बाजरा है।

जन्मकाल का ऐतिहासिक परिचय—जिस समय सेठ जी का जन्म हुआ था देश में अँगरेजी राज्य था। देश के लोग स्वतन्त्रता की लड़ाई में हाथ बँटा रहे थे। उस समय देश में बड़े-बड़े नेता थे। उन नेताओं के नेतृत्व में भारतीय स्वतन्त्रता का कायम करने की चेष्टा करते किन्तु अँगरेजों की शासन के सामने उनकी एक न चलती। ऐसे समय में जमनालाल जी का जन्म हुआ।

जीवन वृत्त—सेठ जी का जन्म जयपुर राज्य के सीकर ठिकाना में काशीकाबास नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम कनीराम बजाज और माता का नाम बिरधीबाई था।

ये बचपन में बड़े गरीब थे। कौन जानता था कि एक दिन यही जमनालाल देश का सबसे बड़ा त्यागी महापुरुष होगा। किन्तु गुदड़ी में भी लाल छिपे होते हैं। गाँव के सभी के मुख से अनायास निकल पड़ता 'लड़का भाग्यवान् है। एक दिन जरूर तरक्की करेगा।' सचमुच में सेठजी ने ऐसी तरक्की की कि उनका नाम सुनते ही सभी दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं।

ये वर्धा के व्यापारी श्री बच्छराज जी के दत्तक पुत्र थे। बात यह थी कि बच्छराज का एक ही लड़का था। किन्तु वह जवानी में ही मर गया। बच्छराज जी को मालूम हुआ कि कनीराम जी का लड़का पैदा हुआ है। उन्होंने लड़के को गोद लेने का इरादा किया। यह सुनते ही कनीराम जी ने अपने एक सगी सन्तान को बच्छराज जी के हवाले कर दिया।

सेठजी ने महात्मा गांधी को अपना धर्म पिता बनाया था। इन्होंने महात्मा गांधी जी के जीवन भर का खर्च चलाया। इन्होंने वर्धा में गांधीजी के रहने का आश्रम बना दिया और एक विद्यालय बनवाया। वही विद्यालय आज सेवाग्राम के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने देश के लिए अपनी सारी सम्पत्ति लगा दी। यही कारण है कि इनकी गिनती देश के बड़े-बड़े नेताओं में की जाती है।

सेठजी की मृत्यु ११ फरवरी, १९४२ ई० में कलकत्ते में हुई। उनके निधन से जो स्थान रिक्त हुआ है पुनः उसकी पूर्ति नहीं हुई। सेठजी का निधन राष्ट्र की एक महान क्षति है और देश की उस बुरी परिस्थितियों में उनका उठ जाना ठीक उसी प्रकार से था जिस प्रकार से किसी पुराने रोगी पर भयंकर आघात। महान व्यक्ति हिमालय के उच्च शिखरों की भांति होते हैं। सचमुच जमना लालजी हिमालय के ही तरह थे। जिस प्रकार हिमालय पर सहस्त्रों विपत्तियाँ आईं और उसको उसने सहन किया उसी प्रकार सेठजी के जीवन में ऐसी भयंकर भयंकर भीषण यातनाएं आई हैं कि जिन्हें सुनकर रोमांच हो जाते हैं। वे आग से खेलना जानते थे। और यही त्याग और तपस्या का फल था कि वे देश के एक बहुत बड़े नेता हुए।

पूर्व तयारी —पुण्य तिथि के दिन पूर्व ही छात्रों और शिक्षकों की एक सम्मिलित सभा में अगले दिन के कार्यक्रम की सूचना प्रचारित कर देनी चाहिये।

पुण्य तिथि के दिन विशेष ढंग पर सफाई होनी चाहिये। इस दिन गरीबों की विशेष भलाई करनी चाहिये। सूत्रयज्ञ का समय अन्य दिनों से विशेष होना चाहिये। फिर सभी छात्रों और शिक्षकों की एक सम्मिलित गोष्ठी होगी। इसमें निबंध और कविताएँ आदि पढ़े जायेंगे, उनके संस्मरण पढ़े जा सकते हैं। सभी अपने अपने विषय प्रकट करें। तब वितरण के द्वारा आलोचना करें और उन सभी निबंधों, कविताओं आदि को एकबद्ध कर पुस्तक का रूप दे देना चाहिये। उसे पुस्तकालय में सुरक्षित रख देना चाहिये जिससे आगे दिन काम दे।

शिक्षाएँ —देश के लिए त्याग करने और उत्सर्ग होने की शिक्षा देनी चाहिये। उनके जीवन से सदावृत्त की शिक्षा प्राप्त होती है। कठिनाईयों का सामना करना और हँसते हँसते झेलना। किसी भी काम का उत्तर-दायित्वपूर्ण ढंग से निभाना। गरीबों की तन-मन धन से सेवा करना।

प्रश्न

१ सठजी के जन्म-स्थान का भौगौलिक और जन्म समय का ऐतिहासिक परि–
चय दो।
२ सठजी क जीवन की एक छोटी-सी झिल-मिल झाँकी प्रस्तुत करो।
३ सठ जी दत्तक पुत्र किसके थे और क्यों थे?
४ उनकी मृत्यु क्यों कब और कैसे हुई?
५ उनके जीवन से तुम क्या-क्या सीखते हो?

१२ फरवरी—सर्वोदय दिवस

पूर्व तयारी —सर्वोदय दिवस मनाने की सूचना दो दिन पूर्व से ही घोषित कर दी जायगी। सर्वोदय दिवस के दिन प्रातः काल प्रभातफेरी करेंगे। फिर निकटस्थ गाँव में जाकर ग्रामीणों के साथ सफाई करेंगे और वहाँ से लौटने पर साफ सुथरा होकर विद्यालय आयेंगे। आज सूत्र यज्ञ विशेष रूप से दो घंटा किया जायगा। इसके लिए सूतों से कपड़ा तयार कर गरीबों में वितरित कर दिया जायगा। फिर उस दिन लोग गाँधीजी के नाम पर एक गुंडी सूत देकर उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करेंगे। उन सूतों से कपड़ा तयार कर गरीबों में वितरित कर दिया जायगा। फिर एक गोष्ठी होगी जिसमें लोग सर्वोदय की इतिवृत्ति एवं उसकी रूप रेखा प्रस्तुत करेंगे। भाषण देंगे और तर्क वितर्क भी करेंगे। अन्त में इन सभी भाषण आदि को सङ्कलित कर देंगे और उसे प्रधानाध्यापक के कक्ष में रख देंगे।

सर्वोदय क्या है? —जिस प्रकार विश्व में अधिनायकवाद, साम्यवाद, जनतन्त्रवाद और गाँधीवाद इत्यादि अनेकानेकवाद हैं उसी प्रकार सर्वोदय भी एक वाद है। इन सभी वादों में सर्वोदय का स्थान मूर्धन्य है। साम्यवाद में हिंसात्मक भावना होती है। अतः साम्यवाद में पशुता का समावेश है। हिंसा से प्राप्त वस्तु ग्रहणीय नहीं। हिंसा में दानवता है मानवता नहीं। सर्वोदय की अट्टालिका सत्य, अहिंसा, प्रेम, शांति और सदभावना, विश्व-बन्धुत्व तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की नींव पर आधारित होती है, निर्मित होती है। बापू भारत में सर्वोदय सामाजिक स्थापना करना चाहते थे। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ है सबका उदय। तो जिसमें सभी का विकास हो और सबका उदय हो वही है सर्वोदय समाज ऐसा समाज जिसमें एकांगी उन्नति नहीं हो परंच सर्वतोमुखी विकास हो सबकी उन्नति हो और सभी सुखी हों।

इंगलैण्ड के एक प्रसिद्ध दार्शनिक बेंथम का यह सिद्धान्त था कि सरकार को इस बात पर सदैव जोर देना चाहिये कि किसी भी समाज में अधिक से अधिक व्यक्ति सुखी रहें। बापू ने सोचा कि जिस समाज में अधिक-से अधिक लोग सुखी रहेंगे उस समाज में भले ही कम ही सही किन्तु कुछ लोग

अवश्य ही दुखी रहेंगे। गाँधीजी ने इस सिद्धान्त को अस्वीकार किया। किन्तु इसी सिद्धान्त पर आधारित उन्होंने अपना सिद्धान्त बनाया और उसका नाम रखा सर्वोदय। समाज एक वन जिसमे न तो कोई दुखी रहे और न कोई अधिक सुखी वरन् न कोई दलित रहे न कोई शोषित, सभी समान रहें।

सर्वोदय मे सर्व मंगल की भावना है। इसमे एक के उदय की बात नहीं, वरन् सबके उदय की भावना सम्मिलित है। वस्तुतः समग्र मानव-जाति के अभ्युदय का नाम ही है सर्वोदय। अथात उपनिषदो म एक उद्घोष है—"सर्वे भवन्तु सुखिन । बस उसी का रूपान्तर है सर्वोदय"।

गाँधीजी के विचारो पर महात्मा रस्किन के विचारो की विशेष छाप पड़ी। रस्किन की एक पुस्तक है 'अन्टु दि लास्ट (un to the last) इसी के आधार पर सर्वोदय की रूप रेखा गाँधीजी ने तैयार की। उन्होंने समाज के हर एक पीडित, दलित और शोषित व्यक्तियो के उत्थान की मंगल कामना की। कविवर पंत ने कहा है कि

जग पीडित है अति दुख से
जग पीडित है अति सुख से,

अत —

"मानव जग म बँट जावें,
सुख-दुख औ दुख-सुख म।"

सर्वोदय समाज म विश्व-बन्धुत्व की भावना सन्निहित है और है वसुधैव कुटुम्बकम् के उच्च विचार। समस्त विश्व के सभी प्राणियो के लिए सब दय का द्वार सदा खुला हुआ है। वेदो म भी कहा गया है—

"सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुखभाग् भवेत्"।

अब हम इस सिद्धान्त को व्यवहार म कैसे ला सकते हैं? बापू ने हमारा ध्यान समाज म दलित, पीडित और शोषित गरीबो की ओर आकर्षित किया। उन्होंने कहा कि उन्हीं व्यक्तियो की कठिनाईयो को दूर करने के लिए हम पहले कोशिश करनी है।

इस सिद्धान्त को अच्छी तरह समझने के लिए हम एक परिवार को ही उदाहरण स्वरूप ले लें। परिवार में जो सबसे बड़ा होता है वही परिवार का मुखिया होता है। उसी के विचार और इशारे पर सारे परिवार का कार्य संचालन होता है। यदि मुखिया परिवार के छोटों की जिम्मेदारी छोड़ दे अगर

उनकी कद्र करना छोड दे तो छोटे नष्ट हो जायेंगे। और परिवार सचालन का सिलसिला बिगड जायगा। अत परिवार सुचारु रूपेण तभी चल सकता है जब कि मुखिया परिवार के सभी सदस्यो पर एक दृष्टि रखे। इसी विषय को लेकर बापू न हरिजनो क उत्थान की आवाज उठाई।

सर्वोदय सिद्धान्त यह मानता है कि दुनियाँ के सभी लोग एक है। धम, जाति पाँति एव धनी-गरीब के सारे भाव विचार कृत्रिम है। हम सभी एक दूसरे की सेवा करें हम सभी एक दूसरे का उद्धार करें यही है सर्वोदय का ज्ञान।

हम अपने जीवन मे एकागी उन्नति कदापि नही कर सकते। यदि हम उन्नति करना है तो समाज के सभी व्यक्तियो को साथ ले चलना पड़ेगा। सुख दु:ख, मिलन विछुडन हँसी-गम सब एक दूसरे की सहायता करें तभी हमारी वास्तविक उन्नति होगी। यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम सर्वोन्य सिद्धान्त को ग्रहण करें, अपनावें।

इसम सबो की उन्नति की विराट कल्पना है। शासक और शासित, शोपक और शोषित के भेद भाव को दूर रख कर सबो का नतिक स्तर ऊँचा करना ही इसकी मात्र सिद्धि है। मानव को बधना से उन्मुक्त कर उस स्वतत्र मनाना ही सर्वोदय का परम लक्ष्य है।

इस प्रकार सर्वोदय मे विश्व-कल्याण की भावना सन्निहित है। सर्वोदय समाज में हमारी कु ठित भावनाओ का निराकरण हो सकता है। सत्याचरण के द्वारा ही हम सर्वोदय समाज म सुख-समता का सौरभ फला सकते हैं। प्रेम-दया और सहृदयता की त्रिवेणी प्रवाहित कर सकते हैं। विश्व-बन्धुत्व से ही सर्वोदय समाज के कलेवर की वृद्धि हो सकती है।

देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व मे इन्दौर के सर्वोदय सम्मलन म सव प्रथम सर्वोदय की रूप रेखा प्रस्तुत की गई। समाज शोषण का उन्मूलन करना ही इसका अन्तिम और महान उद्देश्य है। इसी इन्दौर सम्मेलन म सभी को सर्वांगीण, सवतोमुखी प्रगति का स्वणवसर प्रदान किया गया। साम्प्रदायिकता, अस्पृश्यता निवारण, जातिभेद-उन्मूलन ग्रामोद्योग प्रसार, ग्राम-सफाई समाज शिक्षा, नारी-पुनरुद्धार, मजदूर-सगठन इत्यादि बातों पर विशेष जोर दिया गया। सर्वोदय मेला लगाने का भी आयोजन किया गया। यह मेला गाँधीजी की निधन तिथि के दिन लगाने का निश्चित किया गया। सर्वोदय समाज के सचालन हेतु १२ सदस्यो की एक समिति भी है।

इस सिद्धांत को अपनाने के लिए हमें अपने अन्तर को महान् बनाना होगा। अंतर तभी महान् हो सकता है जब प्रेम, सहानुभूति, दया, क्षमा, सत्य, अहिंसा और सहृदयता को अपनावें। तब तक हमारा अंतर महान् नहीं होता, जबतक हम गरीबों, दलितों, पीड़ितों को छाती से नहीं लगा सकते उनसे गले-से-गले नहीं मिल सकते। विश्व के द्वन्द्व का अन्त सर्वोदय से ही हो सकता है। यह सब का परम पुनीत कर्तव्य है कि वे सर्वोदय सिद्धान्त को अंगीकृत करें और एकता, सद्भावना, प्रेम और शान्ति का सन्देश प्रसारित करें।

शिक्षाएँ —गरीबों की सेवा करनी चाहिए। परस्पर के ईर्ष्या, द्वेष कलहादि भावनाओं को विस्मृत करके गले-गले मिलना चाहिए। शोषण का निराकरण करना चाहिए। सभी को एक दृष्टि से देखना चाहिए। किसी को छोटा-बड़ा, धनी या गरीब नहीं समझना चाहिए। सत्य, अहिंसा, प्रेम, सहानुभूति, दया, क्षमा, सौहार्द, सद्भावना को ग्रहण कर लोक-कल्याण करना चाहिए। समाज शिक्षा का प्रचार करना चाहिए।

प्रश्न

१ सर्वोदय से क्या समझते हो?
२ सर्वोदय दिवस मनाने की एक रूप रेखा प्रस्तुत करो।
३ सर्वोदय शब्द कहाँ से आया? इसका अर्थ क्या है?
४ सर्वोदय की रूप रेखा कहाँ प्रस्तुत की गई थी?
इसका मुख्य उद्देश्य क्या है? इससे क्या शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं?
इसमें किन किन बातों पर विशेष जोर दिया गया है।
५ सर्वोदय समाज की स्थापना की आवश्यकता क्यों कर हुई?
६ क्या सर्वोदय की स्थापना से निम्न-समाज का कल्याण सम्भव हो सकता है?

—०—

१३ फरवरी—श्रीमती सरोजिनी नायडू जन्म-दिवस

जन्म स्थान का भौगोलिक परिचय—सरोजिनी नायडू का जन्म हैदराबाद राज्य में हुआ था। यह एक पहाड़ी देश है। यहाँ पर गर्मी काफी पड़ती है। पानी की कुछ कमी होती है। किन्तु जाड़े के मानसून से कुछ वर्षा हो जाया करती है। इस राज्य में विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। यहाँ अनेक प्राचीन विशाल ऐतिहासिक मन्दिर हैं। अब यह राज्य आंध्र प्रदेश में मिल गया और कुछ भाग महाराष्ट्र और मैसूर राज्य में मिल गया।

जन्मकाल का ऐतिहासिक परिचय—जिस समय नायडू का जन्म हुआ, भारत में अंगरेजों का शासन चल रहा था। देश गुलामी की जंजीरों में बँधा था। लोगों को सभी कामों में बंधन लगे थे। नारियों का तो समाज में स्थान नहीं था। स्वतन्त्रता की माँग थी किन्तु स्वतन्त्रता मिलनी भी कठिन थी। देश के नेता आजादी के लिए कुर्बान हो रहे थे। उस समय एक ऐसी ललना का अभाव खटक रहा था जो समाज और देश में नारियों का स्थान ऊँचा कर सके। ऐसे ही समय में सरोजिनी नायडू का जन्म हुआ।

जीवन वृत्त—श्री नायडू का जन्म १३ फरवरी १८७८ ई० में हैदराबाद राज्य में अघोरनाथ चट्टोपाध्याय के घर में हुआ था। उन्हें कोई सन्तान न थी अतः इन्हें पाकर खुशी मनाई।

नायडू की शिक्षा-दीक्षा अंगरेजी ढंग में हुई थी। किन्तु इन्होंने भारतीय वेष-भूषा अधिक पसन्द किया। बाल्यावस्था में ही नायडू अंगरेजी में कविताएँ करती थीं। ये बड़ी प्रतिभाशालिनी थीं। इनकी स्मरण शक्ति इतनी अधिक तेज थी कि इनके पिता इनकी बुद्धि पर आश्चर्य करते थे। कवि का हृदय उन्हें माता पिता के संस्कारों से मिला था। काव्य परिशीलन और उसके चिन्तन, मनन के स्वच्छन्द और विशुद्ध वातावरण में ही उनका लालन पालन हुआ था। ये उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विलायत गयीं। यहाँ पर उनकी काव्य प्रतिभा फूट पड़ी। १८९८ ई० में ये भारत लौटीं। यह पर्दे में रहनेवाली महिला थीं। ब्राह्मण होने पर भी एक अब्राह्मण यानि डा० गोविन्द राजुलू नायडू से विवाह कर इन्होंने जाति पाँति की विषमताओं का मिटाना ही घोषित

थीं। अपने साहित्य प्रेम तथा काव्य प्रतिभा और मधुर वाणी के कारण ही ये 'भारत-कोकिला' के नाम से विख्यात हैं। श्रीमती नायडू का हृदय भारत की परतंत्रता देखकर और गोरों के अत्याचारों को देखकर द्रवित हो गया। सन् १९१८ में राजनैतिक आन्दोलन में एक सफल वक्ता के रूप में ये उदित हुईं और उस समय से इन्होंने देश-सेवा का अटल प्रण लिया जिसे आमरण निभाया। अनेक बार जेल की असह्य यातनाओं को सहा। १९२९ में अफ्रीका गईं और १९३१ में तीसरी गोलमेज सभा में महिला प्रतिनिधि के रूप में इन्होंने भाग लिया। नायडू का सारा जीवन देश सेवा में बीता। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इनको उत्तर प्रदेश का गवर्नर नियुक्त किया गया। गवर्नर रहते हुए इन्होंने देश की बहुत सेवा की और उसमें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। सरोजिनी नायडू भारत की उन नेताओं में से थीं जिन्होंने भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में सक्रिय हाथ बँटाकर देश की नारियों का स्थान समाज में ऊँचा उठाकर आर्य वीरांगनाओं के आदर्श के गौरव को उन्नत कर सारे संसार को चमत्कृत कर दिखाया। २ मार्च, १९४९ ई० को 'भारत कोकिला' सरोजिनी नायडू का स्वर्गवास हुआ। उनकी अनन्य देशभक्ति, अदम्य साहस तथा महान त्याग की कहानी युग युग तक जीती-जागती रहेगी। उनका चरित्र नारियों के बीच में पूजनीय वन्दनीय अनुकरणीय रहेगा।

पूर्व तैयारी—निश्चित तिथि से एक दिन पूर्व सभा की सूचना कर देनी चाहिए। उस दिवस के लिए स्कूल के कार्यक्रमानुसार ही कार्य करना चाहिए। इस दिन बालिकाओं को भजन का अभ्यास अधिक करना चाहिए। एक सभा होगी। शेष पूर्ववत् ही कार्य किए जाएँगे। सभा में ऐसी कविताएँ आदि पढ़ी जाएँगी। उस सभा को सुसज्जित करके पुष्पहार बनाकर सुशोभित कर देना चाहिए।

शिक्षा—देश की नारियों के लिए भलाई के कार्य की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। आदि गीति के [illegible] भाव का मिलन की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

प्रश्न

१. यह 'भारत-कोकिला' क्यों कहा जाती हैं?
२. सरोजिनी नायडू के जीवन का [illegible]?
३. [illegible] होगा।
४. [illegible]?
५. [illegible] प्रकार का [illegible]?
६. [illegible]?

१८ फरवरी—रामकृष्ण परमहंस-जयन्ती

जन्म स्थान का भौगोलिक परिचय—रामकृष्ण परमहंस का जन्म बंगाल के हुगली जिले में कमारपुकुर नामक गाँव में हुआ था। यहाँ पर वर्षा काफी होती है। यहाँ के लोग मानसिक कामों में अधिक तीव्र होते हैं। यहाँ के लोग साधारणतः धोती और कुरता पहनते हैं। यहाँ की मुख्य फसल धान है।

जन्म समय का ऐतिहासिक परिचय—जिस समय रामकृष्ण परमहंस का जन्म हुआ था बंगाल में अंगरेजों का एकच्छत्र राज्य कायम हो चुका था। फ्रांसीसियों का भी राज्य था। दोनों में लड़ाई चल रही थी। उस समय कम्पनी का राज्य था। बंगाल में किसानों पर जमींदारों का आधिपत्य था। जमींदारों के कटु व्यवहार और दुराचरण तथा अत्याचार से सभी किसान त्रस्त थे। इसी समय रामकृष्ण परमहंस का जन्म हुआ था।

धार्मिक और सामाजिक अवस्था—हिन्दू धर्म पर से लोगों का विश्वास उठ रहा था। पाश्चात्य धर्म विचारों का प्रभाव उच्च कुलीन वर्गों पर पड़ रहा था। ब्राह्मणों के विधि विधान पाखण्डमय समझे जाने लगे और ईसाई मत का प्रचार हो गया। इस्लाम तो यथास्थिति में था किन्तु हिन्दू धर्म का ह्रास हो रहा था।

हिन्दुओं में सामाजिक संकीर्णता फैल चुकी थी। ऊँच नीच का भाव बढ़ गया था। ब्राह्मण पाखण्डी हो गये थे। अपने धर्म में च्युत हो रहे थे। शूद्र ईसाई तथा इस्लाम धर्म की ओर झुक रहे थे। वर्ण संकीर्णता का बोलबाला था और समाज छिन्न भिन्न हो रहा था। इसी समय वैदिक धर्म का उपदेश प्रेम और अहिंसा के माध्यम से देने के लिए श्री रामकृष्ण परमहंस का जन्म बंगभूमि में हुआ।

जीवन-वृत्त—रामकृष्ण परमहंस का जन्म बंगाल राज्य के हुगली जिले में कमारपुकुर नामक गाँव में १८ फरवरी १८३६ ई० को हुआ था। घर-बाहर धारों ओर आनन्द गूंज उठा और गाँव में प्रसन्नता छा गया। इनके बचपन का नाम गदाधर था। इनके पिता का नाम खुदीराम तथा माता का नाम चन्द्रादेवी था। ये अपने माता पिता की तीसरी सन्तान थे। ऐसा कहा जाता है कि जब गदाधर का जन्म हुआ था उनकी माता मूर्च्छा में थी तो वे पास की भट्ठी में जाकर चुपचाप राख लपेटा गये।

बालक गदाधर को पाँच वर्ष की अवस्था में विद्यालय में बैठाया गया। कुछ ही दिनों में अपने तेज और प्रताप से इन्होंने सबों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। जो कोई उन्हें एक बार देख लेता बार-बार देखने की इच्छा प्रकट करता। सात वर्ष की अवस्था में ही उनके पिता का देहान्त हो गया। अब उनके पालन पोषण का भार उनकी माँ पर पड़ा। किन्तु वे अपनी माँ को अधिक कष्ट नहीं दिया करते थे। वे अपना समय माँ को नियमित रूप से देने लगे। पिता की मृत्यु का प्रभाव उन्हें खटकने लगा और वे गम्भीर होने लगे।

बचपन के पौराणिक कथाओं और चरित्रों का उनके जीवन पर बड़ा असर पड़ा। वे बचपन में बड़े तेजस्वी थे। वे चित्रकारी भी करना जानते थे।

दक्षिणेश्वर कलकत्ते से ८ मील उत्तर की ओर गंगा के किनारे एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ कालीजी का एक भव्य और विशाल मंदिर है। इसी मन्दिर के इतिहास के साथ परमहंस का इतिहास भी शुरू होता है।

इस मन्दिर में वे अपने भाई रामकुमार के साथ रहा करते थे। यहीं पर उनका परिचय मथुर बाबू, जो इस मन्दिर की प्रतिष्ठापित करने वाली रानी रासमणि के जामाता थे, से हुआ। वे काली और अपनी भक्ति में लीन हो गये। यहाँ पर उनका एक और व्यक्ति से परिचय हुआ जिसने निरन्तर २५ वर्षों तक उनकी सेवा की थी। रिश्ते में वह व्यक्ति उनका भानजा लगता था।

धीरे धीरे उनका मन सांसारिक चीजों से हटने लगा और वे काली की आराधना और मनन चिन्तन में ध्यान मग्न रहे। उनका आध्यात्मिक जीवन उच्च कोटि का था और उनके विचार बड़े ही उदार थे। ऐसा कहा जाता है कि उनकी आध्यात्मिक साधना भक्ति तथा निष्ठा से माँ परमेश्वरी के दर्शन भी प्राप्त हुए थे। वे साधारण बोलचाल की भाषा में दृष्टान्त द्वारा अपने उपदेशों को दिया करते थे। जो उनके सम्पर्क में आते वे शुद्ध हो जाते थे। इन्हीं शिष्यों में से श्री नरेन्द्रनाथ दत्त थे। १८८० ई० में नरेन्द्रनाथ दत्त का श्री रामकृष्ण परमहंस से साक्षात्कार हुआ। ये ही आगे चलकर स्वामी विवेकानन्द के नाम से विश्वविख्यात हुए। १६ अगस्त १८८६ ई० को रामकृष्ण परमहंस का स्वर्गवास हो गया।

इनके धार्मिक विचार बड़े ही शुद्ध और उच्च थे। लोक-कल्याण की भावना उनमें अद्भुत ढंग की थी। वे जीवन में सच्चाई और ब्रह्मचर्य पालन पर विशेष जोर देते थे। वे भक्ति के आगार थे। उनका सारा जीवन दरिद्रों, असहायों, गरीबों, अपंगों और निर्धनों की सेवा में व्यतीत हुआ।

पूर्व तयारी—एक दिन पूर्व ही छात्र एवं शिक्षक एकत्रित होंगे और उसमें अगले दिन का कार्यक्रम निश्चित किया जायगा। दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर विशेष रूप से सब चीजों की सफाई करेंगे। आज सूत्र-यज्ञ में विशेष समय देंगे। फिर एक सभा होगी। इसमें अगर जनता भी सम्मिलित हो सके तो सोने में सुगंध हो। इसमें सभी अपने अपने विचारों को प्रकट करेंगे। तत्व-चिन्तक के द्वारा इसमें संशोधन करेंगे और उन विचारों को जनता के समक्ष प्रस्तुत करेंगे। कविताएं पढ़ी जायेंगी। लेख पढ़े जायेंगे। प्रहसन और नाटक किए जा सकते हैं। इन सबों को लेखबद्ध कर पुस्तक रूप देकर पुस्तकालय में रख देंगे। अंत में परमहंस के उपदेशों को जनता और छात्रों के मध्य रखेंगे जिससे वे अपना सुधार कर सकें। इस दिन लोक कल्याण का काम अधिक होना चाहिए।

शिक्षाएँ—ब्रह्मचारी बनने की कोशिश करनी चाहिए। स्त्रियों को माता के दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करना चाहिए। समाज सेवा का व्रत लेना चाहिए। किसी भी चीज को पराई या अपनी नहीं समझनी चाहिए। सुन्दर और सुगठित शरीर बनाने की कोशिश करनी चाहिए। नियम और संयम में रहने की आदत डालनी चाहिए। अपने आराध्य देव की पूजा कर मन को शुद्ध तथा हृदय को कलुषरहित बनाना चाहिए।

प्रश्न

१ रामकृष्ण परमहंस के जन्मकाल की ऐतिहासिक तथा सामाजिक अवस्था क्या थी?

२ इनका जन्म कब और कहाँ हुआ था? इनके बचपन की क्या स्थिति थी?

३ इनके जीवन-वृत्त की एक छोटी सी झाँकी प्रस्तुत करो। इनके परम प्रिय विश्व-विख्यात शिष्य कौन थे?

४ इनके जीवन से तुम कौन-कौन सी शिक्षाएँ ग्रहण करते हो?

१९ फरवरी गोपाल कृष्ण गोखले पुण्य-तिथि

जन्म स्थान का भौगोलिक परिचय —गोखले का जन्म महारा
कोल्हापुर जिले के कागल नामक गाँव में हुआ था। महाराष्ट्र एक प्राय
है और आज स्वतंत्र भारत का एक राज्य है। यह पहाड़ी जगह है।
अधिक नहीं होता। … के स्वभावतः रहन आदि में हृष्ट-पुष्ट तथा
होते हैं। वर्षा कम होती है। गर्मी कुछ विशेष पड़ती है किन्तु समु
रहने से कुछ ठण्डक पड़ती है।

जन्म-काल का ऐतिहासिक परिचय —जिस समय गोखले का जन्म
था अंग्रेजों का शासन धीरे धीरे भारत में अपना पैर जमा रहा था।
रियासतों में … का भी राज्य था। देश की स्वतंत्रता का …
की चेष्टा कर रहे थे। फिरोजशाह मेहता, दादा भाई नौरोजी, मह
गोविन्द रानाडे इत्यादि देश के प्रमुख नेता-गण राजनीतिक क्षेत्र में हाथ
रहे थे। उसी काल में गोपाल कृष्ण गोखले का जन्म हुआ था।

जीवन वृत्त —गोखले का जन्म ९ मई सन् १८६६ ई० को एक द
ब्राह्मण के घर कोल्हापुर जिले के … कागल नामक गाँव में हु
था। जिस समय वे कागल गाँव की एक टूटी-फूटी झोपड़ी में अपने लड़क
की अठखेलियाँ किया करते थे उस समय कौन जानता था कि एक द
ब्राह्मण का बालक अपनी प्रतिभा से केवल भारत का ही नहीं वरन् स
विश्व का आदर प्राप्त कर लेगा। जिस समय यह … बालक
पुराने … गाँव की वीथियों में घूमा करता था उस दिन कौन जानता
कि यही बालक … के निवासियों का आदर प्राप्त
करेगा। कौन जानता था कि यही बालक भारत का … महाराष्ट्र
कौन जानता था कि … भा
… भारत का अग्रगामी नेता बन जायगा। किन्तु अपने जीवन की घटन
द्वारा गोखले ने यह सिद्ध कर दिया कि … प्रतिभा को
पहचान जो महापुरुष … हैं।

बाल्यावस्था म ही उनम एक अजीब एव असाधारण प्रतिभा थी। बच पन मे ही वे ज्ञान से सभो को आश्चय चकित कर दिया था। व गणित म भी काफी तेज थ। उनके अग प्रत्यग स तेज की ज्योति विकीण हो रही थी। १४ वष की अवस्था म इन्होंने प्रवेशिका परीक्षा मे उत्तीर्णता प्राप्त की। १८ वष की आयु म वी० ए० की डिग्री प्राप्त की। २० वष की अवस्था म प्राध्यापक के पद पर इनकी नियुक्ति हुई। यद्यपि गोखले को इतिहास म एम० ए० की उपाधि नहीं प्रदान की गयी था फिर भी एम० ए० के छात्रा को इतिहास पढाया करते थे। सन १८८४ ई० म गोखले कांग्रेस के अध्यक्ष नियुक्त किए गये। उस समय उनकी अवस्था केवल २८ वष की थी। यह उनकी प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है। इन्होंने उस अवस्था म अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया और इतने परिश्रम स काम किया कि सबो ने मुक्त कठ स उनकी प्रशंसा की।

सन १९०५ ई० म बनारस म इडियन नेशनल कांग्रेस क अधिवेशन के सभापति बनाये गये।

गोखले ने सन १९०५ ई० म एक सस्था भी कायम की थी। उसका नाम भारत-सेवक-समिति (the servants of Indian Society) है। यह आज भी एक जीती-जागती सस्था है और इसका एक मात्र उद्देश्य है भारत का सेवा करना। गोखले ने नमक-कर की कटु आलोचना की। भारत के प्रतिनिधि के रूप म वे कई बार इगलैंड गये और वहाँ पर बडी लगन से काम किया। अफ्रिका म महात्मा गांधी के साथ भी काम किया था। उसके बारे म कदाचित यह कहा गया है कि व जनता का आकांक्षाय कांग्रेस तक पहुंचाते थे और सरकार की कठिनाइयाँ कांग्रेस तक।

१९ फरवरी सन् १९१५ ई० को रात्रि-बेला म गोखले का जीवन प्रदीप सदा के लिये बुझ गया। रात के दस बजे भारत की सारी आशाओं पर पानी फिर गया। सारी आकांक्षाओं का अंत हो गया। राजनीति अखाड़े का एक सर्वश्रेष्ठ पहलवान इस ससार से चल बसा। देश का सच्चा शुभ चिन्तक उठ गया। देश भर म शोक का समुद्र उमड पडा। सभी आठ-आठ आंसू रो रहे थ।

गोखले एक महान आशावादी नेता थे। उनका सारा जीवन राष्ट्रसेवा म ही बीता। शोषित एव दलित जनता का सेवा ही उनका एक मात्र उद्देश्य था, व एक उद्भट वक्ता थ। स्पष्टवादिता, मृदुभाषिता, विनम्रता

एवं निःस्वार्थ भाव से सवा की सेवा की। ये सब उनके चरित्र की विशेषतायें थीं। लार्ड कर्जन के शब्दों में "ईश्वर ने उन्हें असाधारण योग्यताओं से विभूषित किया था, जिसका प्रयोग उन्होंने देश और जनता के हितार्थ किया।"

स्वर्गवास के उपरान्त तिलक ने कहा था—पीड़ित जनता को सन्देश देते हुये भारत वर्ष का यह हीरा महाराष्ट्र का यह रत्न और देशभक्तों (Patriots) का वह राजा आज श्मशान भूमि पर लेटा हुआ अन्त विश्राम ले रहा है। इनकी तरफ देखिये और इन्हीं के समान कार्य करने का उद्योग कीजिये।' गोखले ने ऐसा ऊँचा और सम्मानपूर्ण स्थान केवल अपने चरित्र बल तथा बुद्धि की प्रतिभा से ही प्राप्त किया। किन्तु कुटिल काल के काले कठोर हाथों को कौन रोक सकता है। एक दिन वह सेवा का धमोट हो रहता है।

पूर्व तैयारी—पुण्य तिथि के एक दिन पूर्व ही सभा द्वारा तथा शिक्षकों की एक सम्मिलित गोष्ठी हो। उसमें अगले दिन का कार्यक्रम प्रसारित किया जायगा। दूसरे दिन अगर सुबह में प्रभात फेरी हो तो और भी अच्छा होगा। उस दिन गाँव-मोहल्ले में जाकर वहाँ की सफाई तथा जनता की भलाई के लिए कार्य करना चाहिये। आज निश्चित समय में विशेष समय सुव्यवस्था से किया जाय। अंत में एक सभा होगी। उसमें सभी भाग लेंगे। लोग गोखले के प्रति अपने विचारों को व्यक्त करेंगे। लेख पढ़ेंगे, कविता पाठ करेंगे। प्रहसन करेंगे और इन सबों को एकत्रित कर सुरक्षित रख देंगे। अंत में सभी सेवा का व्रत अपनायें।

शिक्षायें—अधिक-से-अधिक विद्वान् बनने की कोशिश करनी चाहिये। वक्ता बनने की कोशिश करनी चाहिये। देश-सेवा का व्रत लेना चाहिये। जनता की भलाई की बातें सोचनी चाहिये। कोई भी ऐसा कार्य न करना चाहिये जिससे किसी को दुःख या तकलीफ न पहुँचे।

प्रश्न

१ गोखले के समय की ऐतिहासिक अवस्था क्या था?
२ गोखले का जन्म कब और कहाँ हुआ था।
३ बचपन में वे किस प्रकार के थे?
४ वे कांग्रेस के अध्यक्ष कब नियुक्त हुये और कब सभापति बनाये गये?
५ इन्होंने किस संस्था का स्थापन किया था और कब किया था?
६ इनके जीवन-सूत्र का एक विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत करें। इनकी मृत्यु कब हुई थी?
७ इनके जीवन से हमें कौन-कौन-सी शिक्षायें प्राप्त होती हैं?

—०—

२२ फरवरी–कस्तूरवा पुण्य-तिथि

पूर्व तयारी—एक दिन पूर्व सभी छात्रों एवं शिक्षकों को सूचित कर दिया जायगा। दूसरे दिन सुबह में सफाई की जायगी। आज सूत्र-यज्ञ विशेष तौर पर किया जायगा—एक घंटा। सूत्र-यज्ञोपरान्त सभी छात्र एवं शिक्षक एक स्थान पर एकत्रित होंगे और वहाँ पर इनके बारे में चर्चाएं चलेंगी। अंत में प्रधान जी अपना विचार प्रकट करेंगे। पुनः गोष्ठी विघटित हो जायगी।

देश की राजनैतिक हालत—देश में अंग्रेजी शासन की पूरी धाक जम चुकी थी और उसकी दुश्मन चल रही थी। देश की जनता की दशा अत्यंत दयनीय थी। स्त्रियों की हालत एकदम गिर गई थी और समाज में उनकी कोई पूछ नहीं थी। अंगरेजों का सूना अत्याचार होता था और क्रांति में प्रबल वर्ग से दमन चक्र चलाया जाता था। किन्तु इतना होने पर भी स्त्रियाँ—'न होने दूँगा अत्याचार चलो मैं हो जाऊं बलिदान मातृ मंदिर में हुई पुकार चढ़ा दो मुझको हे भगवान'! कहा करती थीं। ऐसे समय में स्त्रियों की दशा को सुधारने के लिए और समाज में उनको भी कुछ स्थान हो उसे दिलाने के लिए एक वीरांगना की आवश्यकता थी और उसे पूरा किया कस्तूरबा ने। इन्होंने न तो लक्ष्मीबाई के समान अश्वारोही बनकर सैन्य-संचालन किया और न महारानी विक्टोरिया के समान किसी देश पर शासन ही किया। ये किसी सम्राट की पत्नी भी नहीं थीं। किन्तु इतना होने पर भी आज उनका हम भारतीयों के हृदय में अपना एक उच्च स्थान है। इसका कारण है उनका त्याग उनकी तपस्या और उनके उच्च पातिव्रत धर्म का पालन।

जीवन-वृत्त—गुलामी के दारुण उदास और नीरस वातावरण में गुजरात के पोरबन्दर में १८६९ ई० में कस्तूरबा का जन्म हुआ। कस्तूरबा के तीन महीने पूर्व उसी पोरबन्दर में म० गाँधी का जन्म हो चुका था। जब इन दोनों की साकार प्रतिमाएं हमारे मानस पटल और हृदय देश के समक्ष आती हैं तो मन में एक अद्भुत और अलौकिक भाव उत्पन्न होता है। प्रकृति ने इन दोनों की एक ऐसी युगल जोड़ी उत्पन्न की जो एक ही दीप की दो शिखाओं में प्रज्वलित होकर अपने अलौकिक प्रकाश से समस्त विश्व को आलोकित कर दिया।

इनके पिता का नाम श्री गोकुलदास माकन् और माँ का नाम श्रीमती विराजकुनवेरबा था। इनके पिताजी अनाज, रुई, और कपड़े का व्यवसाय करते थे। इनका पाणिग्रहण संस्कार गाँधीजी के साथ हुआ।

ये महात्मा जी के साथ मिलकर हाथ में हाथ लेकर और कंधे से कंधे मिलाकर चली और युगल दम्पति की छाया में चार बच्चों का भरण पोषण हुआ। कस्तूरबा गाँधी जी के साथ अफ्रिका भी गयी और उन्होंने वहाँ अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये।

चम्पारण के प्रसिद्ध ऐतिहासिक सत्याग्रह में कस्तूरबा ने एक चिरस्मरणीय और सक्रिय भाग लिया। वे वहाँ की पीड़ित जनता को स्वास्थ्य, सफाई और अनुशासन की शिक्षा देने लगी। स्त्री होने से वे बेधड़क झोपड़ियों में जाती और भारतीयों की दरिद्रता-सूचक रोमांचकर कहानियाँ लोगों के समक्ष प्रस्तुत करती थी। इसी प्रकार धीरे धीरे वहाँ की जनता शिक्षित होने लगी और अँगरेजों तथा अत्याचारी नीलहों की कूटनीति का [illegible] लगी। शिक्षा चलता रहा, चलती रही और फूस की झोपड़ियों के स्थान पर अग्निरोधक (Fire-proof) विशाल इमारतें खड़ी कर दी। चम्पारण की विजय में कस्तूरबा का एक बहुत बड़ा हाथ है।

गुजरात के साबरमती आश्रम में उन्होंने अपना सुन्दर कार्य करना प्रारम्भ किया। इसी समय रौलट एक्ट जारी कर दिया गया। इससे लोगों के हृदय में प्रचण्ड ज्वाला प्रबल वेग से प्रज्ज्वलित हो उठी। जनता ने सरकार को बदलने का निश्चय किया। आन्दोलन का एक तूफान उठा और उस निर्दयी और बेगुनाह जनता पर [illegible] कर दी गई गोलियों की बौछार। सर्वत्र डायर के अत्याचारों की दानवी गाथा अपना विराट रूप दिखा रही थी।

ज्यों-ज्यों दमन चक्र बढ़ा आन्दोलन ने भी [illegible] उसी तरह [illegible] लिया। सन्ताप और धैर्य का बाँध टूट चुका था।

इसी समय [illegible] सरकार ने गाँधी जी को कैद कर लिया। गाँधी जी की गिरफ्तारी से कस्तूरबा ने प्रान्त प्रान्त भ्रमण और सामयिक तथा उत्साहवर्द्धक भाषणों को देकर देश की जनता का ज्ञान बढ़ाने में [illegible] सहायता।

गुलाम भारत माँ की बन्दिता को काटने के लिए बा ने आन्दोलन [illegible] था और उनको बार बार अँगरेजों के सींकचों के अन्दर बन्द [illegible] समाचार [illegible] और अन्तर्वेदना [illegible] से ही [illegible] कर हम से बिछुड़ गयी।

समय की गति शन-शन बढ़ती गई। दूसरा विश्व युद्ध शुरू हो गया। भारत से भी सैनिक भेजे जाने लगे। सन् १९४२ आया और आया ९ अगस्त का वह चिरस्मरणीय दिन। गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' (Quit India) का नारा लगाया। देश की जनता जाग उठी। देश के सभी नेता कैद कर लिए गए। गांधीजी को पूना के आगाखाँ महल में कैद कर भेज दिया गया।

कुछ दिनों के बाद बा को कैदकर उसी महल में भेज दिया गया, जहाँ गांधीजी थे। गांधीजी ने अनशन प्रारम्भ किया। २१ दिनों के बाद उन्होंने अनशन तोड़ा। इसी बीच कस्तूरबा का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। १९४३ ई० में बा की बीमारी ने भयकर रूप धारण कर लिया और उन्हें न्युमोनिया हो गया।

अब उनका अन्तिम समय समीप आ गया। अन्ततोगत्वा २२ फरवरी १९४४ को सायकाल ७ बजकर ३५ मिनट पर सशस्त्र पहरेदारों से निकलकर और सारे देश की जनता से बिछुड़ कर इस दुनिया से सदैव के लिए चल बसी।

बा ने अपने जीवन में अच्छे-से अच्छे दिन और बुरे-से बुरे दिन भी बिताये थे।

आज बा हमारे बीच नहीं हैं। फिर भी उनकी जीती जागती तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत है। उनकी जिन्दगी की एक चलती फिरती कहानी है। बा की स्मृति अमर है और रहेगी। हम आज बा की पुण्य स्मृति के आँसू और श्रद्धांजलि के दो फूल समर्पित करते हैं और उनके नाम पर नतमस्तक हो जाते हैं।

शिक्षाएँ—पातिव्रतधर्म किसे कहते हैं और निर्वाह जीवन में कैसे करना चाहिए इसे यदि स्त्रियों को सीखना है तो बा के चरित्र का अध्ययन और मनन करें तथा अपने जीवन में उतारने की कोशिश करें।

कष्टों से हार मानकर अपने को कष्टों के अनुकूल कैसे बनाया जा सकता है इसे कोई बा के जीवन से सीखे।

प्रश्न

१ बा ने गांधीजी को गाँधी बनने में किस प्रकार सहयोग किया?
२ चम्पारण और गुजरात में बा ने महिला-जागरण का कार्य किस प्रकार सम्पन्न किया?

१२ मार्च—डाण्डी-कूच-दिवस

पूर्व-तयारी—स्कूल बन्द होने के पूर्व सभी को अगले दिन के कार्यक्रम की सूचना दे दी जायगी। दूसरे दिन सूत्र-यज्ञोपरान्त छात्र एवं शिक्षक सभी एक स्थान पर एकत्रित होंगे और वहाँ पर इसका इतिहास प्रस्तुत किया जायेगा। इस इतिहास को लिखकर सजिल्द कर प्रधानाध्यापक के कक्ष में रख दिया जायगा।

इतिहास—सन् १९२९ में पं० जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर में कांग्रेस का एक अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस ने भारत का पूर्ण स्वराज्य निर्धारित किया। अपने सदस्यों को यह आदेश दिया कि केवल पूर्ण स्वराज्य के ध्येय से काम करें। २६ जनवरी १९३० को प्रथम बार पूर्ण स्वाधीनता दिवस बड़े उत्साह से मनाया गया।

इस अवसर पर देश में जो उत्साह प्रकट किया उससे तो यही ज्ञात होता था कि देश राजनैतिक आन्दोलन करने के लिए तैयार है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने गांधी जी को आन्दोलन प्रारम्भ करने का अधिकार भी दे दिया। गांधी जी आन्दोलन प्रारम्भ करने से पूर्व सरकार को अन्तिम चेतावनी देते हुए वायसराय लार्ड इरविन को २ मार्च को साबरमती आश्रम से एक पत्र में लिखा था— भारत एक विस्तृत कारागार है—सविनय अवज्ञा आन्दोलन ही भारत को अराजकता और गुप्त अपराधों से बचा सकता है। क्योंकि देश में एक ऐसी हिंसामय संस्था भी है जो व्याख्यानों प्रस्तावों या सम्मेलनों में विश्वास नहीं रखती वरन् शुद्ध विद्रोह में विश्वास करती है। —यदि इन बुराइयों को दूर करने का आप प्रयास नहीं कर सकेंगे और मेरे पत्र का आपके हृदय पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा तो इस मास की ११ तारीख को मैं आश्रम के उपरोक्त साथियों को लेकर नमक-कानून तोड़ने के लिए चल पड़ूँगा। निर्धनों की दृष्टि से मैं इस कर को सर्वाधिक अन्यायपूर्ण समझता हूँ। स्वाधीनता आन्दोलन मूलतः निर्धनों के हितार्थ है। गांधी जी को नमक के सत्याग्रह में बड़ा दम दिख रहा था कि यही एक ऐसी चीज है जो अमीरों या गरीबों के लिए एक समान महत्त्वपूर्ण चीज है। इस पत्र का उत्तर लार्ड इरविन

१३ अप्रैल

जालियाँवाला बाग हत्याकांड दिवस

पूर्व तयारी —एक दिन पूर्व सभा को इसके विषय में सूचित कर देना चाहिये। दूसरे दिन सूत्र यज्ञोपरान्त सभी शिक्षक एवं छात्र एक स्थान में एकत्रित होंगे और इसके विषय में चर्चायें चलेंगी। छात्रों द्वारा विरचित निबंधों को सकलित कर प्रधान जी के कक्ष में रख देंगे।

चर्चा के समय इस बात का ध्यान रहे कि अंग्रेजी राज्य का इतिहास शुरू में ही बतलाया जाय। १८५७ ई० के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध पर भी प्रकाश डाला जाय। रौलट एक्ट तथा १९२१ के असहयोग आन्दोलन पर भी प्रकाश डाला जाय तथा साथ ही प्रथम विश्व युद्ध और उन्हें इंगलैंड भारत तथा गांधीजी के सहयोग को भी स्पष्ट किया जाय। तब जालियाँ वाला बाग के हत्याकांड का विशद वर्णन किया जाय तथा इस कांड का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा इसकी भी चर्चा की जाय।

सन १९१४ में प्रथम महायुद्ध का अन्त हो गया था। लोगों में पहले से ही असंतोष की आग सुलग रही थी। युद्धोपरान्त भारतीयों पर कर बढ़ा दिया गया था और वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो गयी थी। इन आर्थिक कारणों से भारतीयों में अत्यधिक असंतोष के कारण स्पष्ट झलक रहे थे। बिहार के चम्पारण जिले के किसानों ने अंग्रेज निलहों के खिलाफ में एक जबर्दस्त आन्दोलन खड़ा किया। गुजरात के खेड़ा जिले के किसानों का आन्दोलन भी इसी समय हुआ। इस प्रकार लोगों पर दिन दिन अत्याचारों का दमन चक्र काफी तेजी से बढ़ रहा था। और इसी समय एक नई घटना घट गई। भारत में चलनेवाले आन्दोलनों को कुचलने के लिए तत्कालीन सरकार ने तत्कालीन कानूनों को असमर्थ पाया और इसीलिए एक एक्ट बनाया गया जिसका नाम रौलट एक्ट पड़ा। इसके निर्माता सर सिडनी रौलट थे और उन्हीं के नाम पर इस कानून का नाम रौलट एक्ट पड़ा। इस नये कानून के अनुसार सरकार के हाथों में इतनी शक्ति आ गई कि छोटे से छोटे आन्दोलनों को भी जिससे किसी भी प्रकार की जनहित की हानि नहीं हो सकती थी रोक लगा सकती थी। सारे देश में इसका विरोध किया गया। महात्मा गांधी ने

ही इस जन-व्यापी विद्रोह का नेतृत्व किया और इसी विरोध को प्रकट करने के लिए ही १३ अप्रैल १९१९ को शाम को जलियाँ वाला बाग में एक बहुत बड़ी सार्वजनिक सभा हो रही थी। यह बाग अमृतसर के बीच एक स्थान पर था जो चारों ओर दीवारों और मकानों से घिरा हुआ था। इसमें आने-जाने के लिए एक सकरी गली थी। इस बाग में लगभग २०००० व्यक्ति एकत्रित हुए थे जिसमें बच्चे स्त्री और पुरुष भी शामिल थे। इसी बीच जनरल डायर नामक एक अफसर ने एक सौ भारतीय एवं पचास ब्रिटिश सैनिकों के साथ उस स्थान पर पहुँचा। सभा में इकट्ठा जनता को उसने तितर बितर होने की आज्ञा दी और तीन मिनट बाद ही उन पर गोली बरसाई जाने लगी। इस प्रकार उसने शान्त एवं निहत्थी जनता पर गोली चलाई। गोलियों का चलना तब तक जारी रहा जब तक कुल गोलियाँ समाप्त न हो गईं। कुल मिला कर १६०० फायर किए गये। सरकारी आँकड़ों के अनुसार मृतकों की संख्या ४०० एवं घायलों की संख्या करीब-करीब दो हजार के लगभग थी। मरे हुए एवं घायलों को रात भर वहीं पर छोड़ दिया गया। घायलों के लिए पानी पीने तक का भी प्रबन्ध नहीं किया गया डाक्टरों की सेवा शुश्रूषा की बात तो अलग रही। घायलों में अधिकतर तड़प-तड़प कर मर गये। यही जलियाँ वाला बाग का नृशंस हत्या-काण्ड था जो सारे पंजाब में आतंक फैलाने के लिए जान बूझ कर किया गया। अत्याचारों का यहीं अन्त नहीं हुआ। १५ अप्रैल से २४ अप्रैल तक मार्शल (फौजी कानून) जारी कर दिया गया। लोगों का सम्मानित जीना कठिन हो रहा था। कोड़ों की मार पड़ रही थी और सड़कों पर लोगों को पेट के बल चलने के लिए मजबूर किया जा रहा था। कांग्रेस की ओर से एक समिति की नियुक्ति हुई जिसमें महात्मा गाँधी सी० आर० दास और पं० मोतीलाल जी थे। सरकार की ओर से एक हंटर समिति की नियुक्ति हुई जिसकी रिपोर्ट के सम्बन्ध में स्वयं भारत मंत्री को कहना पड़ा कि निःशस्त्र जनता पर अत्याचार किया गया और औचित्य तथा मानवता की मर्यादाओं का उल्लंघन किया गया।

इस प्रकार सारे पंजाब को त्रस्त किया गया। लोगों की नृशंस हत्यायें की गईं।

शिक्षायें —सभी को मिलकर अत्याचारों का विरोध करना चाहिए। सरकार की शक्ति को समझना चाहिए। संगठन बनाये रखना चाहिए। इससे हम किसी भी बुरी बात को रोक सकते हैं। संगठन नहीं रहने से

शासक गण हम पर अत्याचार कर सक्त है। दूसरा की भलाई पर ख्याल रखना चाहिये। घायला, बेक्सों एव निबला की सेवा करनी चाहिये।

प्रश्न

१ लागां में असन्तोष के बढ़ने के कौन-कौन-स कारण थ?
२ जालिया वाला बाग कहा और किसलिए प्रसिद्ध है?
३ जालिया वाला बाग का हत्याकाड कब हुआ और उसमें कितन व्यक्ति उपस्थित थे?
४ इसन मृतकां और घायलों की स""या को बतलायें।
५ हन्टर कमिटी का रिपोर्ट पर प्रकाश डालें। कांग्रेस के द्वारा नियुक्त कमिटी की रिपोर्ट पर प्रकाश डालें। असहयोग आन्दोलन रौलेट एक्ट एव जालिया वाला बाग से क्या सम्बन्ध है?
६ मार्शल ला क्या है? इसस पजाब में क्या हुआ?
७ जालिया वाला बाग के हत्याकाड से लागां पर एव भारतवर्ष पर क्या प्रभाव पड़ा,
८ जालिया वाला बाग के हत्याकाड क बार में काग्रेस स तथा महामना प० मदन मोहन मालवाय न क्या किया —इन पर प्रकाश डालें।

—०—

२३ अप्रैल बाबू कुंअर सिंह

पृष्ठ भूमि—१८५६ ई० में लार्ड डलहौजी इंगलैंड लौट गया और लार्ड कैनिंग गवर्नर जेनरल होकर भारत आया। इनके शासनकाल की सबसे बड़ी महत्वपूर्ण घटना १८५७ ई० की क्रान्ति थी। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुए करीब सौ वर्ष हो चुके थे। साम्राज्य विस्तार त्वरित गति से हो रहा था। इसके विपरीत इन अंग्रेजों के विरुद्ध अनेक दुश्मन भी उठ खड़े हुए थे। अनेक भारतीय नरेशों एवं सरदारों के मस्तिष्क में अंग्रेज विरोधी भावनायें काम कर रही थीं। इन्हीं विरोधी भावनाओं के फलस्वरूप बहुत-से राजाओं ने षड्यन्त्र एवं युद्ध करके अंग्रेजों को मार भगाने का प्रयत्न किया, किन्तु वे असफल हुए। समय-समय पर छोटे-छोटे विद्रोह होते रहे किन्तु सबसे बड़ा भयंकर एवं संगठित विद्रोह १८५७ ई० में हुआ। इसमें झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, तांत्या टोपे तथा नाना साहब का प्रमुख हाथ था। इन्हीं में से बिहार के बाबू कुंवर सिंह भी थे जो बिहार एवं संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश) के कुछ जिलों से अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये थे।

जीवन वृत्त—अंग्रेजों के चंगुल से देश को मुक्त करने के हेतु १८५७ ई० की देशव्यापी क्रान्ति में शाहाबाद ने प्यासी धरती को अपने रक्त से सिंचित किया। बिहार की क्रान्ति के अग्रदूत बाबू साहब ही थे। झाँसी एवं कानपुर, सतारा में लक्ष्मीबाई और महाराष्ट्र में नाना साहब पेशवा तथा तांत्या टोपे ने उस भयानक क्रान्ति का वीरता एवं सफाई के साथ संचालन किया।

बाबू कुंअर सिंह का जन्म सन् १७७७ ई० में जगदीशपुर (शाहाबाद) में हुआ था। इनके पूर्वज उज्जैन में रहा करते थे। ये लोग आज भी पवार या उज्जैनी कहे जाते हैं। जब अलाउद्दीन खिलजी ने १३९० ई० में मालवा पर अपना अधिकार कर लिया तब वहाँ के तत्कालीन राजा शान्तनु शाह भागकर भोजपुर चले आये। इन्होंने भोजपुर को ही अपनी राजधानी बनाई। राजा शान्तनु शाह के कुल में बड़े-बड़े प्रतापी एवं बहादुर राजा उत्पन्न हुए। इन्हीं राजाओं में से आगे चलकर दो पुत्र हुए जो बाबू कुंअर सिंह और अमर सिंह के नाम से प्रसिद्ध हुए। आज भी यहाँ आरा भोजपुर में [illegible] करते और विशेष [illegible] के कारनामों को और निशानों को इन दोनों साहबों

की अमर गाथायें गीता की ध्वनि में गूँजती सुनाई पड़ेगी। स्वतंत्र भारत के इतिहास में उनकी यश गाथायें स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। शाहाबाद का चप्पा-चप्पा उनके अमर प्रताप से प्रदीप्त है और बिहार का कण कण उनका चिर ऋणी है।

इनकी शिक्षा घर पर ही हुई। हिन्दी फारसी एवं संस्कृत के वे बहुत बड़े पंडित थे। युद्ध क्रिया की शिक्षा में भी बहुत निपुण थे। मुख्यतः इन्हें शिकार करने एवं घोड़े की सवारी करने से विशेष स्नेह था। चतुर सेनापति के लक्षण इनके रोम रोम में कूट-कूट कर भरा हुआ था एवं सेना के कुशल संचालन करने की विलक्षण चतुराई थी। उद्भट वक्ता होने के साथ ही इनमें बचपन से ही अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने की भावना विद्यमान थी। वे बहुत ही उदार एवं धर्मात्मा व्यक्ति थे। दानी होने के साथ ही न्यायी भी थे। अपने सुभट साथियों को भरपूर दान देने में तनिक भी नहीं हिचकते थे।

सन १८५७ का जमाना था। देश में क्रांति के बगूले उठ रहे थे। लोग विद्रोह की भावना से पागल हो रहे थे। सारे देश में क्रान्तिकारियों ने क्रान्ति करने की एक ही योजना बना रखी थी। सभी जगह यह घोषणा कर दी गई कि क्रान्ति ३१ मई को होगी। किन्तु बंगाल के बैरकपुर की छावनी में मंगल पाण्डे नामक सिपाही ने उतावलेपन में कुछ विद्रोहात्मक कार्य कर दिया जिसके कारण क्रान्ति १० मई को ही प्रारम्भ हो गई। क्रान्ति की धधकती हुई लपट सर्वत्र फैल गई। कानपुर की अंग्रेजी सेना ने २५ जून को आत्म-समर्पण कर दिया। इधर एक माह के पश्चात दानापुर के सिपाहियों ने काम करने से इन्कार कर दिया। अब बाबू साहब ने भी स्वतंत्रता संग्राम की धधकती ज्वाला में कूद पड़े और दानापुर के सिपाहियों को तन मन धन से भरपूर सहायता दी।

आरा की अंग्रेजी सेना के अन्दर पर २७ जुलाई को उन्होंने चढ़ाई की और वहाँ की कचहरी, खजाना, जेल आदि पर अपना स्वत्व स्थापित कर लिया। दो दिनों के अन्दर कप्तान डैनबर एक बड़ी सेना लेकर आरा में चढ़ आया। किन्तु वह भी मात रहा और युद्ध में मारा गया। कुछ ही दिनों के बाद मेजर ऐयर एक दूसरी बड़ी सेना लेकर स्वयं आरा आ पहुँचा किन्तु उसे भी मुँह की खानी पड़ी। इसी बीच दूसरा दल भी आ पहुँचा जिसके कारण कुँवर सिंह की हार हो गई और ऐयर का आरा पर अधिकार हो गया।

इसके बाद कु वर सिह अपनी राजधानी जगदीशपुर आये। मजर ईरे ने जगदीशपुर म चढ़ाई की। बीबी गज और दुलउर के बीच घमासान युद्ध हुआ। इस लड़ाई म बहुत-सी अग्रेज सना मारी गई ईर की हार होना जा रही थी किन्तु विशाल सना होने की वजह स वह आग की ओर बढ़ता गया। अब बाबू साहब अपनी राजधानी जगदीशपुर को छोड़कर जगल म आकर रहना शुरु कर दिया और यहा म छापामार युद्ध का तरीका अपनाया।

जब लखनऊ क क्रान्तिकारियो ने आजमगढ जाने की योजना बनाई तब इधर बाबू साहब न भी अपनी सना लकर आजमगढ पर धावा किया। यह समाचार पाते ही कप्तान मीलमन न एक गोरा सना क साथ तोपो से लस होकर आजमगढ से २५ मील की दूरी पर तोलिया नामक स्थान म कु वर सिह पर आक्रमण किया। १८ मार्च, १८५८ ई० को मीलमन के छक्के छूट गये और उसकी सना समर भूमि स भाग उठी। तब कर्नल डेम्स २८ मार्च को अपनी सना लकर आजमगढ आ धमका। किन्तु वह भी युद्ध म हार रहा और आजमगढ पर बाबू साहब का स्वत्व कायम हो गया। सनतर जनरल लार्ड कैनिग जो उस समय प्रयाग म था बाबू साहब क भय से थर्रा उठा। उसने मार्कर को बाबू साहब स विरोध करने क लिए भेजा किन्तु वह भी हारकर उल्टे ही पाँव लौट आया। ६ अप्रैल को बाबू साहब ने अपना विजय घोषणा की।

अब व अपना १२०० सना क साथ बनारस स जगदीशपुर लौटकर वापस आ रहे थे। बीच म कप्तान लुगर्ड न बाबू साहब स मुकाबला की किन्तु बाबू साहब न उन चकमा दकर अपनी सारी सना को गाजीपुर म निकट आहूनगा पार करा दी। सारी सना पार करने क पश्चात बाबू साहब एक नाव पर गगा पार कर रहे थ। लुगर्ड की सना न गोली छोड़ना प्रारम्भ कर दी। एक गोली बाबू साहब की कलाई म आ लग गई। बाबू साहब उसी समय बायें हाथ स अपना तलवार उठा करके कहुनी क नीच का हाथ काटकर माँ भागीरथी क चरणों म यह कहते हुए अर्पित किया माँ, दुष्ट फिरगी का गोली ने इसे अपवित्र कर दिया। अब यह मेरे काम का न रहा, अतएव यह तुम्हें समर्पित है।'

बाबू साहब क जगदीशपुर पहुँचते ही जगदीशपुर निवासियो न विभिन्न बाजा-गाजा क साथ उनका शानदार स्वागत किया और उनकी आरती उतारा।

बाबू साहब ने हाथ के कट जाने पर भी अस्सी वर्ष की अवस्था में २३ अप्रील, को अपनी जन्मभूमि और राजधानी जगदीशपुर को अंग्रेजों से मुक्त कर ही लिया। लेकिन घाव की पीडा असह्य होती जा रही थी और घाव भी बढ़ता चला जा रहा था। अत में उसी के कारण २६ अप्रील १८५८ को उनका स्वर्गवास हो गया।

इस प्रकार —

चला गया वो कुंवर अमरपुर साहस से सब अरिदलजीत।
उसका चित्र देखकर अब भी दुश्मन होते हैं भयभीत।
वीर प्रसविनी भूमि धन्य वह धन्य वीर वह धन्य अतीत।
गाते थे और गायेंगे हम हरदम उनका जय के गीत।
स्वतन्त्रता का सैनिक था, आजादी का दीवाना था।
सब कहते हैं कुंवर सिंह भी बड़ा वीर मरदाना था।

(मनोरंजन प्रसाद सिंह)

बाबू कुंवर सिंह बडे ही सच्चे सच्चरित्र व्यक्ति थे। चरित्रबल के कारण ही अपनी ढलती अवस्था में भी इतनी बडी लडाई छेडी। वे इतने बडे सूरमा थे कि अंग्रेज भी उनसे डरते थे और नामी अंग्रेजों को भी समर भूमि में मैंने दिया। आज यद्यपि बाबू साहब हमारे मध्य नहीं हैं तथापि उनकी स्मृति अब भी और सदा-सर्वदा के लिये हमारे मानस-पटल और हृदय पटल पर अंकित रहेगी। धन्य था वह वीर और धन्य थी वह भूमि जिसने इतना बडा शूर-वीर रत्न उत्पन्न किया।

जगदीशपुर में आज भी उनका महल यादगार स्वरूप कायम है जो उनकी याद दिलाता रहे। दर्शक आते हैं देखते हैं और उनके प्रति अपनी श्रद्धा-ञ्जलियाँ अर्पित कर दो चार अश्रुकण बिखेर कर चले जाते हैं। आज देश को आवश्यकता है ऐसे ही पुत्र रत्नों की जो देश का नव निर्माण और नवोत्थान करे जो जन-जन में क्रान्ति उत्पन्न करे जिसे देखकर विश्व की आँखें चका-चौंध हो जाय।

ध्यान देना चाहिये ... से खूब
चाहिये ... स्वतन्त्रता
... मग्न

आग की ओर रहना चाहिये। कोई काम निष्काम भाव से करना चाहिये। काम करने से पहले फल की आशा नहीं करनी चाहिये।

प्रश्न

१ सन् १८५७ की क्रान्ति के होने का क्या कारण था?
२ कुंवर सिंह का क्रान्ति में क्या हाथ रहा?
३ कुंवर सिंह के विषय में क्या जानते हो?
४ वे इतने लोकप्रिय क्यों हुए?
५ उनके जीवन से तुम्हें कौन-कौन सी शिक्षायें प्राप्त होती हैं?
६ १८५७ की क्रान्ति क्यों महान् है?

---

७ मई—रवीन्द्रनाथ टैगोर

पृष्ठ भूमि—भारत सदियों, सहस्त्राब्दियों से ऋषियों और मनीषियों की जन्मभूमि रहा है। कृष्ण के कर्मयोग का स्थल भारत ही रहा। बुद्ध की तपोभूमि यही थी। टैगोर का जन्म दे भारत ने युगों से जीती हुई परम्परा को यथावत कायम रखने की चेष्टा की है।

भारत की पुण्य भूमि में रवि बाबू का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब कि देश पराधीनता की बड़ियों में जकड़ा था। भारत माता सदियों से लौह प्राचीर में बन्द सिसकियाँ भर रही थी। उस समय देश में क्रान्ति के बगूले उठ रहे थे। आन्दोलन की चिनगारियाँ प्रज्वलित हो रही थी।

भारत में अंग्रेजों का एकछत्र राज्य स्थापित हो चुका था। देश की दशा आयम्नि प्राय बुरी से भी बदतर होती जा रही थी। अंग्रेजों का मात्र काम था लूटना। भारत का धन विदेशों में जा रहा था। भारतीयों के लिये यह असह्य था। स्वतन्त्रता के लिये लोग लड़ रहे थे। इनके जन्म के कुछ ही दिन पूर्व १८५७ ई० की महान क्रांति हुई थी। उसमें भारतीयों को सफलता तो हाथ नहीं आ सकी किन्तु अंग्रेजों को यह ज्ञात हो गया कि भारतीय भी अपनी स्वतन्त्रता के लिये मर मिटने वाले हैं। इस भांति १८५७ ई० की अग्नि को लाठी और बन्दूकों से नीचे कुचल दिया गया फिर भी भारतीयों ने हिम्मत नहीं हारी। अभी भी उसकी धमनियों में उष्ण रक्त खौल रहा था। लोग स्वतन्त्रता का सूर्य देखने के लिये तड़प रहे थे। अपने को गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने के लिये यथाशक्ति चेष्टा कर रहे थे। कुछ ऐसी ही सक्रान्ति काल की बेला थी जबकि भजपति वीणा पाणि के वरदपुत्र रवि बाबू का उदय हुआ।

जीवन वृत्त—रवि बाबू का जन्म ७ मई १८६१ को कलकत्ते के ऐसे भव्य भवन में हुआ जहाँ सुख की सभी सामग्रियाँ उपलब्ध थी। इनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ अपनी विद्वत्ता तथा सात्विकता के लिये बंगाल में विख्यात थे। ऐसे ही पिता की देखरेख में बालक रवि दूज की चाँद सा विकसित हो चला। उसे कभी किसी वस्तु की कमी नहीं खटकी।

बंगाल में उस समय बहुसंख्यक शिक्षक ऐसे थे, जो पढ़ाने के बजाय पीटने में ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। शिक्षकों की ऐसी क्रूरता से स्कूलों में पढ़ने से उनका दिल उचट गया। ऐसे स्कूलों में पढ़ना उन्हें कदापि स्वीकार नहीं था जहाँ पर मार पड़ती हो। उनके पिताजी ने इस भाव को ताड़ लिया। महर्षि देवेन्द्रनाथ ने अपनी सम्पूर्ण सहानुभूति उन्हीं पर समर्पित कर रखी थी। अतः बालक रवि की पढ़ाई की उत्तम व्यवस्था घर पर ही कर दी गई। घर पर प्रारम्भिक शिक्षा अर्जित करने के उपरान्त वे ब्रिटेन गये। वहाँ पर लंदन में दो वर्षों तक शिक्षा प्राप्त की।

छात्र-जीवन में ही रवि बाबू खुले नील व्योम और उसमें इतस्ततः विचरण करते हुए उमड़ते-घुमड़ते बादल और उनके मध्य चमकती हुई चपला की चमक को मुग्ध होकर देखा करते थे। प्रफुल्ल प्रसून को वायु के झोंकों में झूमते देख कर हृदय भी झूम उठता। सरिता की चंचल लहरों को देख कर उन एक अपूर्व आनन्द की अनुभूति उनकी काव्यशक्ति का स्रोत थी। उन्हें एक विचित्र प्रेरणा प्राप्त हुई। काव्यशक्ति तो प्रायः १२-१३ वर्ष की अवस्था में ही उत्पन्न हुई। बस मात्र उत्पन्न होने भर की देर थी विकसित होने में कुछ भी समय नहीं लगा।

जब रवि बाबू ने इस विश्व के रंगमंच पर प्रवेश किया तो दुनिया ने सर्वप्रथम इन्हें साहित्य के रूप में देखा। साहित्य के जिस विषय पर उन्होंने भूमिका में चित्र बनाया वह चमक उठा। साहित्य के जिस क्षेत्र में उन्होंने अपने चरण बढ़ाये, वह सुरभित हो उठा। उनकी लेखनी से साहित्य का कोई अंग अछूता नहीं रहा। कहानी, उपन्यास, नाटक, प्रबंध, आलोचना गीतिका सब कुछ लिखा और खूब सफल होकर लिखा। बंगला और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लिखा। साहित्यिक रवि बाबू ने प्रकृति को भी देखा अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ के समान साहित्य की ओर दृष्टि मोड़ाई समाजशास्त्री आँखों से और राजनीति को विश्वशान्ति की आँखों से। उनके हृदय में एक स्वर्णिम आशा अंकुरित हो रही थी और उसी आशा को अपनी लेखनी द्वारा कागज के पन्नों पर अंकित कर दिया। उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह मानव के हित सभी युगों के लिए लिखा। सन् १८७८ में इनकी पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं और तदनन्तर मृत्यु पर्यन्त उनकी कोई न कोई रचना बराबर ही प्रकाशित होती रही। बंगला में लिखी हुई रचनाओं की पृष्ठ-संख्या १०००० तक पहुंच गई है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अंग्रेजी में लिखा

गीतांजलि जो उनकी उद्भुत लेखनी की अमर देन है। इसे नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ और मिली बंगेजों के दिल की सच्ची सहानुभूति। रवि बाबू भारत के ही नहीं वरन एशिया के सर्वप्रथम नोबेल पुरस्कार विजेता थे।

उनकी पुस्तकों का अनुवाद विश्व की सभी प्रमुख भाषाओं में उनके जीवन-काल में ही प्रारम्भ हो गया। ऐसा सौभाग्य शायद ही किसी को प्राप्त होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि किसी को ख्याति मिलती है तो मृत्यु के बाद ही। किन्तु रवि बाबू इसके अपवाद थे। धन्य रवि बाबू जिसने अपने जीवन-काल में ही इतना ख्याति अर्जित की जिसे न तो काल खा सकता है और न कोई चुरा सकता है।

देशभक्त रवींद्र का व्यक्तित्व लेखनी और वक्तृता में यत्र-तत्र सर्वत्र बिखरा है। आवश्यकता है उसे सोचने और समझने की और संग्रहित करने की। उन्होंने बंग भंग का सदैव विरोध किया। जालियाँवाला बाग के हत्याकांड की कटु आलोचना की। सदा-सदा अपनी ओजस्विनी वक्तृता में उन्होंने भारतीयों को मन्त्र पुनीत पथ पर अग्रसर होने के लिये और उनके कर्त्तव्यों की याद दिलाते रहे।

विश्व भारती तथा शान्ति निकेतन कवि की अमर स्मृति और स्मारक हैं। विश्व भारती तो अन्तराष्ट्रीयता की ऐसी मंजिल पर स्थित है, जहाँ पर हिन्दू बौद्ध सिक्ख ईसाई सभी एक मन से चिन्तन मनन कर शान्ति की खोज करते हैं। प्रशान्त वातावरण, जहाँ पर न तो जातीयता है और न साम्प्रदायिकता।

शान्ति निकेतन तो वस्तुतः शान्ति का घर है। यह एक तपोभूमि है। इसकी स्थापना रवि बाबू के पिता श्री महर्षि देवेंद्र नाथ टगोर ने की थी और पूर्ति इन्होंने की। यही है कवि की सतत साधना अथक परिश्रम और उद्योग का फल और प्रतीक। इसको अग्रसर करने में कवि ने तन मन धन से सहायता की। यहाँ तक कि इसकी पूर्ति के लिये इन्होंने अपनी पत्नी के आभूषण तक को भी बेच डाला।

जिस तरह उनकी लेखनी बेजोड़ थी उसी तरह उनकी आवाज भी विलक्षण और मधुर थी। जब कभी वे अपनी स्वरचित कविता सुनाने लगते तो जनता मंत्रमुग्ध हो जाती। एक अद्भुत आकर्षण था उनकी आवाज में एक विचित्र सम्मोहन था जो किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर लेता

था। उनके हाथों में चित्रकारी करने की भी योग्यता भी छिपी थी, जो बुढ़ापे में प्रकट हुई। उनकी ऐसी चित्रकारी होती थी, जिसे देखकर चित्रकला-ममज्ञ भी निस्सय विमुग्ध हो जाते। यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि रवि बाबू एक महान् कवि ही नहीं वरन सफल कहानीकार और उपन्यासकार, गंभीर दार्शनिक चिंतक और मनीषि, मधुर संगीतज्ञ, इन्द्रधनुष कलाकार और मानवता मन्दिर के सच्चे पुजारी थे। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी।

ऐसे रवीन्द्र का, जिन्होंने गरीबों के गम और दीन दुखियों के दर्द का अनुभव किया और मरे अंतर्राष्ट्रीय हो कर। रवि बाबू के नामोच्चारण से ही रोम रोम पुलकित हो जाता है। इनका प्रशस्त भाल, स्निग्ध और मर्मस्पर्शी आँखें, लम्बे बाल और लम्बी दाढ़ी एवं नया चित्र आँखों के सामने स्पष्ट हो जाता है। मस्तक नत हो जाता है इनके आगे। पर रवि ७ अगस्त १९४१ को इस दुनियाँ को छोड़कर सदा के लिए चले गये। उनके निधन पर प्राय सभी प्रमुख राष्ट्रों ने आँसू बहाये और प्रतिवर्ष उनकी निधन तिथि पर सहस्त्रों आँसू बहाते हैं। आज रवि नहीं हैं पर उनके आलोक का अस्त नहीं हुआ है।

यह आज भी हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के प्रशस्त पथ को प्रकाशित कर रहा है और सदियों तक हमारी पथ प्रदर्शन करता रहेगा। उनके इस अभाव की पूर्ति हम मात्र आँसू बहाकर नहीं कर सकते। उनकी दिवंगत आत्मा की शांति के लिए उनके विचार उनके दर्शन को समझना होगा और उनको अपने जीवन के कर्मक्षेत्र में उतारने और अपनाने की चेष्टा करनी होगी।

शिक्षायें :—किसी भी विषय का अध्ययन करो तो खूब डूबकर अध्ययन करो। यदि कुछ लिखो तो भली भाँति सोच-समझ कर लिखो। विचार ऊँचे होने चाहिये साथ ही जनसाधारण का सम्बन्ध रखना। जब तक बुद्धि परखा नहीं जाय बकवास की चीजें न लिखा करो। कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिए जिससे किसी का चोट पहुँचे, कोई भी काम विश्व-कल्याण और लोक मंगल के लिए करना चाहिये। स्वदेश से प्रेम करना चाहिये तथा सभी लोगों को अपनी ही तरह समझना चाहिए।

प्रश्न

१ रवि बाबू के जन्म काल की अवस्था क्या थी ?
२ रवि बाबू पलित हुए भारतीय हो कर और मरे अन्तर्राष्ट्रीय हो कर, ैसे ?
३ रवि बाबू का जीवन चरण सक्षेप में प्रस्तुत करो ?
४ उन्हें विश्व-कवि क्यों कहा जाता है ?
५ विश्व को इनकी प्रमुख देन क्या है ?
६ उनके जीवन स तुम्हें कौन-सी शिक्षायें प्राप्त होती हैं ?

—०—

१० मई—प्रथम स्वाधीनता संग्राम दिवस

पूर्व तयारी—प्रथम स्वाधीनता-संग्राम दिवस मनाने की सूचना सभा को तीन दिन पूर्व ही दे दी जायगी। शिक्षक एवं लड़के इसकी अच्छी तरह से तैयारी करेंगे। लड़के भिन्न भिन्न विषयों पर निबन्ध लिखेंगे। कवितायें पढ़ी जायेंगी। इस संबंध में लड़के अभिनय भी करें। १० मई के सुबह में प्रभात फेरी की जायगी। आस पास के गांवों में जाकर सफाई की जायगी। विद्यालय की भी सफाई उस दिन विशेष प्रकार से की जायगी। वन्दनवार सजाये जायेंगे। आज विशेष रूप से एकाध घंटे तक सूत यज्ञ होगा। इसके बाद सभा छात्रों को अपने-अपने वर्गों में उनके वर्गाध्यापक इस संग्राम पर कुछ बतलायेंगे। फिर अन्त में छात्रों एवं शिक्षकों की एक सम्मिलित गोष्ठी होगी, इसमें लड़के भाषण देंगे निबंध पढ़ेंगे और प्रहसनादि प्रस्तुत करेंगे। अन्ततोगत्वा सभापति के भाषण के बाद गोष्ठी विघटित हो जायगी।

देश की तात्कालिक हालत—देश में अंग्रेजों का प्रभुत्व बढ़ चला था। कम्पनी का शासन जोर पकड़ रहा था। सारा देश मृतप्राय सा हो रहा था। देश में कोई राजनैतिक शक्ति नहीं थी। मुगलों का तो नाम निशान तक मिट गया था। समस्त देश परतन्त्रता के बंधन में जकड़ा जा रहा था। रजवाड़ों और नवाबों का राज्य छीना जा रहा था। जमींदारों से जमीन ली जा रही थी। अमीरों की सम्पत्ति पर अधिकार जमाया जा रहा था। लोगों का [illegible] जा रही थी। नारियों और बच्चों का दिन दहाड़े कत्लेआम किया जा रहा था। इन सारे अत्याचारों को एक स्वाभिमानी प्राणी कहाँ तक सह सकता था। ऐसी हालत में देश में एक भीषण क्रान्ति का होना अति आवश्यक था। इस क्रान्ति के अनेकानेक कारण हैं। उन कारणों का संक्षेप यहाँ पर प्रस्तुत किया जा रहा है—

१ मुगल सम्राट के साथ दुर्व्यवहार—अंग्रेजों ने मुगल सम्राट के साथ जो दुर्व्यवहार किया इससे देश में सनसनी सी फैल गयी। कम्पनी के शासक सम्राट को नजराना देना एवं अन्य प्रकार से सम्मान प्रदर्शित करना बन्द कर दिया गया। एक लाख मासिक के स्थान पर केवल १४ हजार रुपया ही मासिक पेंशन दिया जाता था। अंग्रेजों की इस कुनीति से लोगों में असन्तोष फैला।

२ अवध के नवाब के साथ दुर्व्यवहार —अंग्रेजो ने बलपूर्वक लखनऊ पर अधिकार करके वहाँ के नवाब वाजिद अलीशाह को निष्कासित कर दिया। उसके महलो को निर्लज्जतापूर्वक लूटा था। इतना ही नहीं वहा के बेगमो के साथ अत्यत घणित दुर्व्यवहार किया था। इससे बडे वर्गों म निराशा एव असतोष की लहर फैली। फिर वहाँ की शासन व्यवस्था नष्ट हो जाने से जनता और भी क्रुद्ध हो चली।

३ अपदस्थ सनिको मे असतोष —देशी राज्यो क ध्वस्त हो जान म उनकी सेना समाप्त कर दी गई। इस तरह करीब साठ हजार लोग बेकार हो गय। विद्रोह क समय ये भी क्रातिकारी हो गय।

४ जमीदारों के साथ दुर्व्यवहार —अग्रेजो ने जमीदारों से भी जमीन छीनकर उन्हे गोद लेने के अधिकार से वचित कर दिया। बहुत लोगो की पूरी-की पूरी जमीन छीन ली गयी। मणिपुर के राजा के १८८ गावो म ११६ छीन लिय गय। इस प्रकार इनकी आर्थिक दशा इतनी खराब हो गई कि भूमि के दाम पर ३०% या ४०% पर भी ऋण मिलना कठिन हो गया। इस प्रकार जमीदार भी उनके शत्रु हो गय।

५ रूसी आक्रमण की आशका —उसी समय यह अफवाह उड गयी कि क्रिमिया के युद्ध म हारने क कारण रूस भारत पर चढाई करगा।

६ ब्रिटिश शासन की समाप्ति की भविष्यवाणी —सन १७५८ म पलासी युद्ध जीतकर क्लाइव न अंग्रेजी राज्य कायम किया था यह भविष्यवाणी हुई कि सौ साल बाद यह राज्य नष्ट हो जायगा। १८ ७ ई० की क्राति इससे भी प्रभावित हुई।

७ धन का निष्कासन —अग्रेजो न भारत को स्थायी निवास नहीं बनाया था। अत धन कमाकर वे अपने देश ले जाते थ जो भारतीयो को असह्य हो गया।

८ भारतीय व्यापारो तथा उद्योगो का ध्वस—औद्योगिक क्राति क कारण अंग्रेज भी प्रभावित हुए। अत जहाँ ये गये वहाँ पर उन्होने उद्योग पर एकाधिकार कर लिया। इस तरह भारत के उद्योग तथा व्यापार की हानि हुई।

९ बेकारी की समस्या —देशी राज्यो के अपहरण से काफी सनिक बेकार हो गय, जिसस काफी असतोष फैला।

१० अंग्रेजी शिक्षा प्रचार —अंग्रेजो न भारतीय शिक्षा विरुद्ध अंग्रेजी का प्रचार किया। सभी धर्मों तथा जातियो क लोग एक जगह शिक्षा प्राप्त करते

थे जो भारतीय परम्परा के विरुद्ध था। अतः विद्रोह की आग भड़कने लगी।

११ भारतीय सैनिकों की विशाल संख्या —१८५६ ई० में भारतीय सैनिक २३३००० तथा अंग्रेज ४५३२२ थे। अतः इस विषमता से भी क्रांति हुई।

१२ वेतन, भत्ता-तरक्की में भेद भाव —भारतीय सैनिकों का वेतन भत्ता कम मिलता था। ऊँचे पद भी इन्हें नहीं दिये जाते थे। वे सब अंग्रेजों के लिए ही सुरक्षित थे। अतः इससे भी असंतोष की आग भड़की।

१३ अफवाहों का प्रकोप —उस समय अफवाह फैली कि सेना में दिये जाने वाले आटे में मनुष्य की हड्डी का चूर्ण मिला था।

१४ चर्बी वाले कारतूस —इसी समय यह भी खबर उड़ी कि कारतूसों में गाय तथा सूअर की चर्बी है। नलिका की खोल प्रयोग से पूर्व दाँत से काटना होता था। अतः हिन्दू मुसलमान सैनिक खिलाफ हो उठे।

ये ही मुख्य कारण हैं।

क्रान्ति का स्वरूप
(Nature of Rebellion)

सन् १८५७ ई० की क्रांति भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण और अपूर्व घटना है। सम्भवतः १८५७ ई० की क्रांति से अधिक महत्त्वपूर्ण घटना भारत में नहीं घटी (Perhaps a more fortunate occurence than the mutiny of 1857 never occured in India)

कुछ लोगों का कथन है कि क्रांति एक तूफान की भाँति आई जो थोड़ी देर तक रही और ध्वंस करती हुई चली गई। बाद में इसके बहुत कम चिह्न रह गए (The mutiny is like a tropical storm, devastating but short lived, passed away and seemed to live few traves behind it)

लेकिन यह धारणा गलत है। क्रांति का अन्त तो अवश्य हो गया किन्तु इसका प्रभाव बहुत व्यापक पड़ा। क्रांति के स्वरूप के बारे में अनेक विद्वानों में विभिन्न मत हैं। कुछ लोग इसे सिपाही विद्रोह का नाम देते हैं। इसमें प्रधानतः अंग्रेज विद्वान् हैं। किन्तु कुछ आधुनिक भारतीय इतिहासकार जैसे पंडित नेहरू और सावरकर अशोक मेहता आर० सी० मजूमदार और

वृंदावनलाल वर्मा आदि अधिक विख्यात हैं। इन्होंने अपने तर्कों के आधार पर यह प्रमाणित करने की चेष्टा की है कि यह एक राष्ट्रीय जनक्रान्ति एवं स्वतन्त्रता प्राप्ति का पहला किन्तु भीषण विद्रोह था। अंग्रेज विद्वानों के विचारों में भी कुछ मतभेद अवश्य पाया जाता है। सर जान लारेंस के मतानुसार यह केवल एक सैनिक विद्रोह था। जिसका तत्कालीन कारण कारतूस वाली घटना थी। इसका कोई भी सम्बन्ध किसी पूर्वगामी षड्यन्त्र से नहीं था यद्यपि बाद में कुछ असन्तुष्ट व्यक्तियों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए लाभ अवश्य उठाया। (The munity has it origin in the army and that is proximate cause was the cartidge affair and nothing else It was not atributable to any antecedent conspiracy what ever, all the it was after words taken advantage of by disaffected per sons to compass their own ends) सरजान सील के विचारानुसार, सैनिक विद्रोह पूर्णतया अराष्ट्रीय सैनिक विद्रोह था। जिसका न कोई देशीय नेता था और न जिसको जनता का समर्थन प्राप्त था।'

(The mutny wholy unpatriotic selfish Sepoy-mutny with no native leadership and no popular support)

इस विचारधारा के बिल्कुल विपरीत सरजेम्स आउटरम की घोषणा है कि 'यह अंग्रेजों के विरुद्ध मुसलमानों का षड्यन्त्र था जो हिन्दुओं की शिकायत के बल पर लाभ उठाना चाहते थे। कारतूसवाली घटना ने विद्रोह से समय के पूर्व ही उन्हें भड़का दिया जबकि वह भलीभाँति संगठित भी नहीं हुआ था और उसे जनप्रिय राज विद्रोह का रूप देने के लिए पर्याप्त प्रबन्ध भी नहीं किये गए थे। (It was the results of Muhamadans cons piracy making capital Hindu grivances The carti dge encedent morely precipitated the mutiny before adequate arrangements had been made for making the muting a first step to a popular in sanctions)

आधुनिक भारतीय इतिहासकार श्री सावरकर एवं जनार्दन महता इत्यादि ने इस भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम की संज्ञा प्रदान की है। इसमें सैनिकों के साथ-साथ बहुत-से सामान्य जन भी अंग्रेजों से असन्तुष्ट थे भाग लिया था।

अधिकांश क्रान्तिकारियों का उद्देश्य था अंग्रेजों को मार भगाना। क्रान्ति १८५७ ई० के प्रारम्भ में दिल्ली में वितरित गये पर्चों में स्पष्ट घोषणा थी कि—'Drive out the foreigners O all Hindustanis' मुगल सम्राट बहादुरशाह के द्वारा राजपूत राजाओं के नाम में लिखित पत्रों से इस बात की पुष्टि होती है। उसने लिखा था—मेरी हार्दिक इच्छा है कि फिरंगी भारत से निकाल दिए जायें। यदि आप सभी राजा दुश्मन को देश से बाहर निकालने के लिए तलवारें ले लें तो मैं अपना सारा शाही शक्ति और अधिकार देशी राजाओं के संघ के हाथ सुपुर्द कर देने को तैयार हूँ। (I am willing to resign my imperial authority in the hands of confederacy of native princes who are chosen to eversise it but expel the English from India.) यद्यपि इस विद्रोह का सूत्रपात सैनिक विद्रोह के रूप में हुआ किन्तु इसके पीछे एक सौ वर्षों के अत्याचार और अन्याय की कहानी छिपी हुई थी। पंडित नेहरू ने (Discovery of India) में लिखा है—'यह केवल सैनिक विद्रोह ही नहीं था। यह शीघ्र ही फैल गया और इसने जन विद्रोह तथा भारतीय स्वाधीनता संग्राम का रूप धारण कर लिया। (It was such more than military mutiny, and it spread rapidly and assumed the character of a popular rebellion and a war of Indian independence.) था और डा० मजूमदार ने इस बात की संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की है। उनका कहना है—

It is true to say that the outbreak was primarily the mutiny of the Sepoys. There is enough evidence to support the views of Norton and Duff that it is same areas the commotion become which spread and soon developed the character of a great revolt. इससे प्रतीत होता है कि अधिकतर का कहना है कि यह एक राष्ट्रीय आन्दोलन था न कि सैनिक विद्रोह। उनका कहना है कि— The creses came. At first apparently a mere military mutiny it speedily changed its character and became a national insurrections. इससे यह प्रमाणित होता है कि यह

पत्र में लिखा था कि— We are isolated from the heart of the people, there is utter absence of the tie between the governed and governers The minds of the people are in a very disaffected state ' मिस्टर जस्टिस मकार्थी ने 'History of our times' में लिखा है कि—'It was the rebellion of native races against English powers' सर चार्ल्स बाल ने 'Indian Mutiny' में लिखा है कि—Meerut Sepoys in a movement found a leader, a flag and a cause and the mutiny was transformed into a revolutionary war इस प्रकार उक्त तर्कों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक राष्ट्रीय जन आन्दोलन था। यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि इसमें राष्ट्रीयता का नितान्त अभाव था। हाँ उस समय राष्ट्रीयता का विशेष विकास नहीं हो पाया था। यह क्रान्ति कलकत्ता से पंजाब तक फैल गई थी। अँग्रेज विद्वान टेवेलियन कानपुर नरेटिव्स (Kanpur Naratives) में लिखता है कि from Calcutta to Punjab they exhibited dangerous tamashas and puppet shows in festivals their method of propaganda डा० नेहरू के शब्दों में—इसमें कुछ राष्ट्रवादी तत्व भी विद्यमान थे। (There were some nationalistic elements in it ')।

सन् ५७ की क्रान्ति के राष्ट्रीय आन्दोलन होने का यह प्रमाण है कि हिन्दू और मुसलमानों में पूर्णरूपेण शान्ति रही और दोनों ने मिलकर अपनी स्वतन्त्रता की शक्तियों का संगठन की चेष्टा की। हिन्दुओं ने भी मुसलमानों को पूर्ण सहायता दी। उन्होंने मुगल-सम्राट का नेतृत्व अंगीकार किया। नाना साहब ने अध्यक्षता स्वीकार की। सिक्खों ने भी इस विप्लव में यथा शक्ति सहायता दी। क्रान्ति को राष्ट्रीय आन्दोलन कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। वस्तुतः यह एक भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम था न कि केवल सिपाही विद्रोह।

क्रांति के संगठन पर एक दृष्टि — ५७ के विप्लव के संगठन कर्ताओं में नाना साहब तथा उनके वकील अजीमुल्ला खाँ का नाम क्रान्ति के इतिहास में अमर है। अजीमुल्ला खाँ अत्यंत प्रतिभावान व्यक्ति था। उसने रूस, मिस्र, इटली एवं टर्की तथा अन्य देशों में घूम घूमकर अंग्रेजों के संगठन का पता

लगाया। सम्राट बहादुरशाह और महारानी बेगम जीनत महल क्रान्ति की योजनाओं से पूर्ण सहमत थीं। इधर अवध के नवाब वाजिद अली शाह और उसकी रानी बेगम हजरत महल तब उसके प्रतिभावान वजीर विद्रोहियों से मिल गये। अजीमुल्ला खाँ की पुकार पर हिन्दुओं ने गंगाजल की और मुसलमानों ने कुरान की शपथ ग्रहण की कि अंग्रेजों को इस देश से निष्कासित करने में अपना सब कुछ होम कर देंगे। साथ ही फैजाबाद के मौलवी अहमद शाह अली का भी नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अन्ततोगत्वा नाना साहब एवं अजीमुल्ला खाँ ने तीर्थयात्रा के बहाने देश का भ्रमण कर संगठन कायम किया। कमल का फूल और चपाती क्रान्ति के चिह्न निश्चित किये गये। कमल के फूल सैनिकों में और चपाती गाँवों में घुमाई गई। इन चिह्नों का तात्कालिक तात्पर्य क्या था यह अवश्य रहस्यात्मक ही है। सम्पूर्ण देश में 31 मई को क्रान्ति प्रारम्भ करनी थी। यह बात भी कम आश्चर्य की न थी कि इतने बड़े व्यापक जन-आन्दोलन का भेद भी पता अंग्रेजों को न लग सका।

क्रान्ति का प्रभाव—सर्वप्रथम क्रान्ति का प्रारम्भ बंगाल में बैरकपुर की छावनी में प्रारम्भ हुआ। इन सैनिकों से नये कारतूसों का प्रयोग करने के लिए कहा गया था। किन्तु इन लोगों ने इन्कार कर दिया। इधर अफसरों ने सैनिकों से अस्त्र-शस्त्र जमा करने को कहा। कुछ लोगों ने जमा किया किन्तु अधिकांश लोगों ने विद्रोह करने का निश्चय किया। फलस्वरूप 29 मार्च को सामान्य मैदान (परेड ग्राउण्ड) में ही मंगल पाण्डेय नामक एक ब्राह्मण ने अपने सैनिकों को विद्रोह करने के लिए ललकार दिया। इस पर सारजेन्ट ह्यूसन ने उसे पकड़ना चाहा। मंगल पाण्डे ने सार्जेन्ट ह्यूसन पर भी गोली चला दी। सार्जेन्ट ह्यूसन ढेर हो गया। इतना ही नहीं उस वीर ने एक और दूसरे अंग्रेज को भी उसी तरह घायल कर दिया पर वह भी घायल हो चुका था। ऐसी अवस्था में उसे गिरफ्तार कर लिया गया। आठ अप्रैल को इस वीर को फाँसी पर लटका दिया गया।

बैरकपुर छावनी की घटना के बाद क्रान्ति की ज्वाला मेरठ में जा पहुँची। यहाँ भी कारतूस बाँटे गये। किन्तु यहाँ भी सैनिकों ने उनका प्रयोग करने से इन्कार कर दिया। 9 मई को 85 सैनिकों को आठ से दस साल तक कठिन कारावास की सजा सुनाकर कारागार में बन्द कर दिया गया। इस विश्वासघातपूर्ण घटना से सैनिकों एवं नागरिकों में विद्रोह और असन्तोष की ज्वाला धधकने लगी। अब उनके लिए 31 मई तक रुकना दूभर प्रतीत होने लगा। दूसरे दिन 10 मई को रविवार का [illegible]

साथ मेरठ में विप्लव की ज्वाला धधक उठी। लोग कारावास का फाटक तोड़कर सैनिकों को मुक्त करने लगे और अंग्रेज अफसरों को मारने लगे।

उसी दिन दो हजार अश्वारोही दिल्ली के लिए रवाना हुए और ११ मई को दिल्ली पहुँच गये। यहाँ भी बहुत से ध्वंसात्मक कार्य किये गये। बारूद के घरों में आग लगा दी गई और अनेक अंग्रेज अफसर मारे गये।

इस प्रकार धीरे धीरे क्रान्ति समस्त देश भर में व्याप्त हो गई। झाँसी, लखनऊ, अवध, बनारस, इलाहाबाद, कानपुर और बिहार में क्रान्ति ने भीषण रूप धारण किया।

क्रांति का दमन—इस भयानक क्रान्ति को देखकर अंग्रेज तो पहले घबड़ाये किन्तु बाद में बड़े ही साहस से काम लिया। निर्ममता तथा नृशंसता पूर्वक क्रांति का दमन किया गया।

दिल्ली में विजय प्राप्त कर बहादुर शाह को रंगून भेज दिया गया। वहाँ पर उसकी मृत्यु ८७ वर्ष की अवस्था में १८६२ ई० में हो गई।

बनारस में अंग्रेजों ने स्त्रियों और बच्चों पर घोर अत्याचार किये और उनकी सामूहिक हत्यायें की गईं। सिपाहियों का दमन नष्ट करके वहाँ भी विद्रोह की अग्नि शान्त कर दी गई।

झाँसी में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई आठ दिनों तक अदम्य उत्साह से दिन रात लगातार लड़ाई करती रही। लेकिन कुछ देशद्रोहियों ने अंग्रेजों से मिल कर किले का फाटक खोल दिया। अन्य स्थानों की भाँति यहाँ भी स्त्रियों बच्चों और पुरुषों पर अंग्रेजों के नृशंसतापूर्वक अत्याचार हुए। हत्यायें भी की गईं। अन्त में रानी भागने को बाध्य हुई, महल से निकल गयी और सौ मील की यात्रा करके कालपी पहुँची। यहाँ पर अन्य क्रान्तिकारी भी थे। किन्तु अंग्रेजों ने यहाँ पर भी धावा बोल दिया। रानी यहाँ पर भी अपूर्व वीरता से लड़ी। १७ जून १८५८ ई० को अंग्रेजों ने क्रान्तिकारियों को घेर लिया। भयानक संग्राम हुआ। रानी लड़ते-लड़ते शत्रुओं से घिर गई थीं। मारा मार कर निकल गया। पर शत्रुओं ने भी पीछा नहीं छोड़ा। फलतः उनका घोड़ा एक नाले में गिरकर मर गया जिससे रानी आहत हो गयी। किन्तु इस अवस्था में भी उसने असंख्य शत्रुओं का सामना किया और लड़कर १८ जून को शाम को लड़ाई के मैदान में ही स्वर्ग सिधारी। उसके भृत्य रामचन्द्र राव ने घास की चिता बनाकर उनकी लाश को भस्म कर दिया। इस प्रकार झाँसी अंग्रेजों के हाथ में चला गया।

बिहार में भी क्रान्ति की ज्वाला ने प्रचण्ड रूप धारण किया। आरा के निकटस्थ जगदीशपुर के जमींदार बाबू कुंअर सिंह जो अस्सी वर्ष के वृद्ध थे इनकी नसों में भी आजादी का लहर दौड़ने लगी। वे इस क्रान्ति की प्रचण्ड ज्वाला में कूद पड़े। उन्होंने आजमगढ़ से लेकर आरा तक में क्रान्ति की आग सुलगायी। उनकी जीत होती रही और वे वृद्ध होते हुए भी लड़ते रहे। ८ अप्रैल १८५८ ई० को लड़ते-लड़ते ही उन्होंने वीरगति प्राप्त की। उनका छोटा भाई अमर सिंह भाग गया। उसने अपना शेष जीवन वहीं और रम व्यतीत किया। हमारा राष्ट्र तथा इतिहास भी स्पष्ट करने में असमर्थ है।

इस प्रकार बिहार में भी क्रान्ति की प्रचण्ड ज्वाला का दमन किया गया। क्रान्तिकारियों के प्रमुख नेता अब समाप्त हो चुके थे। अब केवल तात्या टोपे, राव साहब और फिरोज शाह बच गये थे। तात्या टोपे ग्वालियर में २० जून के बाद हो गया। फिर अलीपुर २२ जून को अंग्रेजों के हाथ में चला गया। अब उत्तर भारत में शान्ति होने लगी। तात्या टोपे मध्य भारत में विद्रोह भड़काता रहा। २५ दिसम्बर १८५८ को वह बागियों के दल से बाहर निकला। इसी बीच एक विश्वासघाती सरदार मानसिंह के अंग्रेजों से मिलने के कारण वह भिन्न-भिन्न स्थानों पर भटकता रहा।

१० जनवरी को तात्या, राव साहब और फिरोज शाह की गुप्त सभा हुई थी। इसी बीच में हिन्दी के ज्ञान के कारण तात्या को वहाँ से भाग जाना पड़ा।

फिर तात्या, राव साहब और फिरोज शाह अपने साथियों के साथ २१ जनवरी को जंगल के समीप सिकार में प्रकट हुए। अंग्रेजों ने इनका पीछा किया जिससे फिर हार खाना पड़ा।

निराश होकर तात्या अपने मित्र राजा मान सिंह की शरण में गये। किन्तु उसने मित्र होते हुए भी उनके साथ विश्वासघात किया। फलस्वरूप ७ अप्रैल १८५९ ई० को तात्या अंग्रेजों के हाथ में आये। राव साहब भी पकड़ लिये गये और जागीरदार मार्ग की तलाश में लग गये।

फिर उन पर मुकदमा चलाया गया। १८ अप्रैल को तात्या को फाँसी दे दी गई और इस प्रकार राव साहब के प्राणों का अन्त हो गया और सन् १८५७ ई० की क्रान्ति समाप्त हुई। इस युद्ध का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम कहा गया है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण भारत में विद्रोह की अग्नि को अंग्रेजों ने दबा दिया।

क्रान्ति की निफलता के कारण

१ क्रांति का समय से पहले आरम्भ हो जाना —विद्वानों की ऐसी धारणा है कि क्रांति के विफल होने का सबसे जबरदस्त कारण था समय के पहले ही आरम्भ हो जाना। यदि क्रांति निश्चित समय पर शुरू हुई होती तो भारत में ब्रिटिश सत्ता का उन्मूलन हो गया होता।

२ क्रांति का स्थानीय होना—दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि यह क्रांति सारे देश में नहीं फैल सकी। यह जहाँ तहाँ छिटपुट रूप से ही फैली जिसे दबा दिया गया।

३ सफल नेता का अभाव —जहाँ कहीं भी क्रांति हुई वहाँ क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करने वाला कोई नहीं था। सभी मनमानी करते थे। यह भी क्रान्ति की विफलता का एक कारण है।

४ राजाओं की स्वामिभक्ति —कुछ भारतीय नरेश ऐसे थे जो अंग्रेजों को अपना शुभचिन्तक मानते थे और उन्हीं के स्वामिभक्त बने तथा क्रान्ति को दबाने में अंग्रेजों का साथ दिया। जिससे क्रान्ति असफल रही।

५ आर्थिक असुविधायें—क्रान्तिकारियों को शुरू में तो काफी रुपया पैसा साहूकारों ने दिया किन्तु बाद में उन्होंने देना बन्द कर दिया जिससे उन्हें आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

६ कृषकों का असहयोग —इस क्रान्ति में क्रान्तिकारियों को कृषकों का सहयोग नहीं प्राप्त था। यही नहीं वरन् जहाँ तहाँ किसानों ने ही क्रांति को दबा दिया।

७ अंग्रेजों के लिये समय की अनुकूलता —१८५७ ई० का वर्ष अंग्रेजों के लिये अनुकूल रहा। क्योंकि उस समय तक चीन और क्रिमिया के युद्ध समाप्त हो चुके थे और अंग्रेजों की सेना विशाल थी जो दमन करने के लिये काफी था। इधर फारस की भी पराजय हो चुकी थी अतएव उस दिशा से कोई भय या आशंका नहीं था।

इस प्रकार क्रान्ति की असफलता के अनेक कारण हैं।

क्रांति का महत्व —भारतीय इतिहास में १८५७ ई० की क्रांति का अपना बड़ा महत्व है। दासता के बंधन से अपने को मुक्त करने का यह प्रथम और प्रबल प्रयास था। इसके अतिरिक्त इस क्रांति ने यह सिद्ध कर दिया कि भारतवासियों को अधिक दिन तक परतन्त्र रखना कठिन है।

१ जून—दादा भाई नौरोजी पुण्य तिथि

पूर्व तैयारी—एक दिन पूर्व सभा में दादाभाई नौरोजी पुण्यतिथि की सूचना दे दी जायगी। इस पुण्यतिथि को सफाई विशेष रूप से करेंगे और पूजन भी पूर्व एक घंटे तक करेंगे। इसके उपरान्त सभी छात्र एवं शिक्षकगण एक स्थान पर एकत्रित होकर विचारों का आदान प्रदान करेंगे। लोग इनके विषय में भाषण देंगे, निबंध पढ़ेंगे और कविता पाठ करेंगे। भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम तथा कांग्रेस का इतिहास बतलाया जायगा और यह भी बतलाया जायगा कि इन्होंने किस प्रकार स्वाधीनता संग्राम में भाग लिया तथा इन्हें कहाँ तक सफलता मिली। दादाभाई किस प्रकार स्वतन्त्रता संग्राम के प्रबल स्तम्भ रहे, किस प्रकार १८५७ ई० की क्रान्ति विफल रही और उससे क्या क्या लाभ और हानियाँ हुईं।

देश की राजनैतिक अवस्था—देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। लोग आजादी के लिये पागल बने रहते थे। किन्तु अंग्रेजों के समक्ष एक न चल रही थी। उस समय का वायसराय लार्ड रिपन था। दादाभाइ नौरोजी जैसे राष्ट्र सेवक और देशभक्त के जाने से आकांक्षा थी कि देश स्वाधीन हो, किन्तु आपसी फूट और जाति पांति के भयंकर भेद के कारण स्वप्न भ्रान्त हो गए। अनेक लोगों ने अपनी जान की बाजी लगा दी और भारत माँ के चरणों पर अपने को उत्सर्ग कर दिया। किसी ने ठीक ही स्वर सुनाए थे कि—

> शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले
>
> वतन पै मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।

और हम सचमुच उनका नाम और गौरव के साथ लेते हैं जिन्होंने मौत से पूर्व शहीद होकर हमें आजादी दिलाई। दादाभाई नौरोजी ऐसे ही अमर शहीदों में से एक थे।

कांग्रेस का इतिहास—इस समय तक भारत में सब लोग एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता महसूस करने लगे। क्योंकि जिस प्रकार अंग्रेजों का विरोध करने के लिये सरकार के द्वारा पुकार पर भारतीय एक अखिल संगठन की ओर प्रेरित हुए। उसी समय एलन ऑक्टेवियन ह्यूम (A. D. Hume) नामक एक अंग्रेज सरकारी कर्मचारी ने सिविल सर्विस से

अभूतपूर्व कार्य किया और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन को आगे की ओर बढ़ाया।

दादाजी [illegible] के समान ही उदार और न्यायप्रिय तथा शान्ति के प्रबल समर्थक थे। वे कहा करते थे कि हम भारतीय किसी एक बात में यकीन करते हैं और वह यह कि यद्यपि किसान तनिक मंद बुद्धि हैं लेकिन यदि एक बार उसे कोई बात समझा दी जाय कि वह अच्छी और उचित है तो अपने आप उसके कार्यरूप में परिणत किये जाने के प्रति विश्वस्त हो सकते हैं। वे न तो कभी किसी सफलता में अत्यधिक प्रसन्न होते थे और न किसी विफलता में अत्यधिक दुःखी होते थे।

कांग्रेस के मंच से प्रथम बार स्वतन्त्रता की माँग रखने का श्रेय भी दादा जी को ही है जिन्होंने १९०६ ई० में सभापति के भाषण में कहा था— हम कोई रियायत नहीं चाहते, हम तो न्याय चाहते हैं। हम स्वशासन अथवा इंगलैण्ड और अन्य उपनिवेशों जैसा शासन चाहिये। जब कांग्रेस के गरम और नरम दल के नेताओं के बीच खुला विरोध चल रहा था तो इस संकटपूर्ण स्थिति में पितामह दादा जी ने अपनी चातुरी एवं व्यक्तित्व से इस संघर्ष को रोका और कलकत्ता अधिवेशन में सर्वप्रथम घोषणा की 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे प्राप्त करना ही कांग्रेस का एकमात्र लक्ष्य है।' इसके उपरान्त उन्होंने सार्वजनिक जीवन से विश्राम ग्रहण कर लिया और १९१७ ई० के १ जून को उनका देहावसान हो गया।

वस्तुतः दादा भाई जनता के सच्चे सेवक थे और वे स्वतन्त्रता के परम पुजारी एवं अनन्य उपासक थे। देशभक्ति की भावना उनमें कूट कूट कर भरी थी और समस्त जीवन ही देशभक्ति से पूर्णरूपेण प्रभावित था। उन्होंने अपने व्यक्तित्व से भारतवासियों के हृदय में उस स्थान को पाया था जिसके लिए इतना ही कहा जा सकता है। गांधी ने उनके विषय में लिखा है— यदि किसी मनुष्य में देवांश होता है तो वह उनमें विद्यमान है। दादा भाई का नाम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के स्वच्छ नीलाम्बर में स्थित चमकते तारों में चमकते ध्रुवतारे के समान निरन्तर और निष्कलंक रहेगा।

शिक्षाएँ — हमें देश के लिए तन मन धन अर्पित कर देना चाहिए और मनसा वाचा कर्मणा से उसकी सेवा करना चाहिए। देश की स्वतन्त्रता को

कायम रखने का सच्चा प्रयत्न रखना चाहिए। लोगों में एकता और संगठन लाने का कोशिश करना चाहिए। [illegible] और न्यायप्रिय होना चाहिए।

प्रश्न

१. दादाभाई नौरोजी के समय को देश की स्थिति कैसी थी? कांग्रेस की स्थापना कैसे किसने कब और कहाँ की? कांग्रेस ने क्या-क्या किया है?
२. दादाभाई नौरोजी की जीवनी संक्षेप में प्रस्तुत करें।
३. उनके जीवन से आपको कौन-कौन सी शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं?
४. भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की प्रथम लड़ाई कब हुई थी? उसके बारे में आप क्या जानते हैं?

चितरंजनदास घर म ही च थ आइ० सी० एस० की परीक्षा पास करने किन्तु अनुत्तीर्ण होने के बाद वे वहां से बैरिस्टर होकर लौटे। १८९८ ई० में विजनी स्टेट के दीवान वरदा प्रसाद की कन्या वासन्ती के साथ इनका पाणिग्रहण संस्कार हुआ।

इंगलैण्ड से लौटने के उपरान्त उन्होंने कलकत्ता हाईकोर्ट में अपना अभ्यास शुरू किया। वे प्रारम्भ से ही स्वतंत्र विचार के थे। हाईकोर्ट में शीघ्र ही इनकी बहुमुखी प्रतिभा फूट पड़ी। इनकी प्रसिद्धि बढ़ चली। इनकी प्रसिद्धि का एक और कारण है। वह यह कि जिस समय लार्ड कर्जन महोदय वायसराय थे उस समय बंगाल को दो भागों में विभक्त करने की बात चली। इससे हलचल मच गई तथा बंगालियों के हृदयों में एक आग ही भड़क उठी। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में जोरों का आंदोलन प्रारम्भ हुआ। उसी समय २ मई १९०८ ई० में बम बनाने का कुछ सामान एवं कारतूसें भी मिली और कई पत्र भी मिले। इन पत्रों के आधार पर ३८ व्यक्तियों पर राजद्रोह का मुकदमा चला। ब्रिटिश सरकार की ओर से कलकत्ते के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर मि० नाटो थे।

आसामियों की ओर से कोई नहीं था। इस समय निस्पृह और निष्पक्ष होकर काम करनेवाले की जरूरत थी। इसी समय चित्तरंजनदास जी का आविर्भाव हुआ। आठ महीने तक मुकदमा चलता रहा। अंत में इनकी जीत हुई। जीत होते ही इनकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई। समस्त देश में इनकी चर्चा होने लगी।

दासों के मुकदमों में इन्होंने अपने त्याग का परिचय दिया। इससे उनकी उन्नति का द्वार खुल गया। इसी मुकदमे के कारण वे देशबन्धु के नाम से पुकारे जाने लगे।

उन्होंने बैरिस्ट्री में बहुत रुपये अर्जित किये किन्तु देश-सेवा हेतु और गरीबों में वितरित कर दिया।

१९०८ ई० में उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया। शीघ्र ही इनकी गणना कांग्रेस के महारथियों में होने लगी। १९०६ ई० में दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में कांग्रेस के अधिवेशन में ये बंगाल प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए। १९१७ ई० में भवानीपुर की राजनीतिक सम्मेलन इनके नेतृत्व में काफी सफल रहा। १९१९ ई० में रौलट बिल पास हुआ। इस बिल का सभी भारतीयों ने विरोध किया। इस सत्याग्रह के कारण सरकार

और जनता में कई स्थानों पर मुठभेड़ हुई। इनमें अमृतसर की घटना का प्रमुख स्थान है। इससे सरकार ने कुपित होकर मार्शल लॉ (फौजी कानून) जारी कर दिया। सारे भारत में हलचल मची और पार्लियामेंट तक यह आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। सरकार ने उसके लिए एक जाँच कमिटी बनाई। इसमें चार अंग्रेज और तीन भारतीय सदस्य थे। जाँच कार्य होने लगा। इस पर कांग्रेस ने विरोध प्रगट किया। उसने एक अलग अपनी कमिटी बनाई जिसके सदस्य देशबन्धुदास भी थे। इन्होंने रिपोर्ट तैयार करने में बड़ी सहायता की। सन् १९२० ई० में गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन की घोषणा की। देशबन्धुदास भी गांधीजी के प्रस्ताव से पूर्ण सहमत थे। अपनी चलती वकालत पर ठोकर मार गान्धी टोपीधारी होकर असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े।

इनकी काफी सनसनी फैल गई। देशबन्धुदास के पुत्र चित्तरंजनदास को छः मास की सजा की गई। इनकी बहन और स्त्री भी गिरफ्तार कर ली गई। १० दिसम्बर १९२० ई० को देशबन्धुदास भी पकड़ लिए गये। छः मास के बाद वे जेल से छूटे। १९२२ ई० में गया कांग्रेस अधिवेशन में वे सभापति चुने गये। इन्होंने विट्ठल भाई पटेल और मोतीलाल नेहरू के साथ स्वराज्य पार्टी की स्थापना की और उसके संचालन की भी व्यवस्था की। धीरे धीरे यह पार्टी मजबूत होती गई।

इसके कुछ समय के उपरान्त उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और वे दार्जिलिंग चले गये। वहाँ पर १६ जून १९२५ ई० को उनकी मृत्यु हो गई। सारे देश में सनसनी मच गई। भारत माँ का एक अनमोल लाल आज उठ गया। सभी लोग उनके नाम आँसू बहाये और श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं।

देशबन्धुदास कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में से एक थे। राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण उन्हें अनेकानेक यातनाओं का सामना करना पड़ा। जेल की सजा भी काटनी पड़ी और अन्त में अपना स्वास्थ्य भी खोना पड़ा। इतना होने पर भी उन्होंने देशसेवा से मुँह नहीं मोड़ा। उनकी मृत्यु से राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत बड़ा धक्का लगा और राष्ट्रीय आन्दोलन कमजोर पड़ गया।

शिक्षाएँ —हमें भी उनकी तरह देशभक्त बनना चाहिए। समय पड़ने पर देश के लिए बलिदान होने में भी हिचकना नहीं चाहिए। त्यागी और उदार बनना चाहिए। सार्वजनिक कार्यों में हाथ बँटाना चाहिए। गरीबों की सदा सेवा करनी

चाहिए। किसी भी व्यक्ति का उचित सम्मान करना चाहिए। अपना पराया का भेद भाव नहीं रखना चाहिए। सबों को समान दृष्टि से देखना चाहिए। सेवा और सहायता में कभी मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। गरीब व्यक्तियों का सत्कार करना चाहिए।

प्रश्न

१. देशबन्धु दास के समय देश की राजनैतिक अवस्था कैसी थी?
२. उनका जीवनवृत्त संक्षेप में प्रस्तुत करें।
३. राजनीतिक क्षेत्र में उनका कब पदार्पण हुआ?
४. इन्होंने कौन कौन से प्रमुख कार्य किये?
५. वे देशबन्धु के नाम से क्यों पुकारे जाते हैं?
६. इन्होंने किस पार्टी की स्थापना की थी?
७. इनके जीवन से आपको कौन-कौन सी शिक्षाएं मिलती हैं?



१८ जून—महारानी लक्ष्मी बाई

पृष्ठ भूमि—१८५६ ई० में डलहौजी इंगलैंड लौट गया और लार्ड कैनिंग गवर्नर जनरल होकर भारत आया। इसके शासन-काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना १८५७ ई० की क्रान्ति थी। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुए लगभग शताब्दी पूरी हो चुकी थी। साम्राज्य विस्तार त्वरित गति से हो रहा था। अतः इन अंग्रेजों के विरुद्ध बहुत से दुश्मन उठ खड़े हो गए। जनता, भारतीय नरेश और सरदारों के मस्तिष्क में अंग्रेज विरोधी भावनायें काम कर रही थीं। इन्हीं विरोधी भावनाओं के फलस्वरूप बहुत-से राजाओं ने षड्यन्त्र एवं युद्ध करके अंग्रेजों को मार भगाने का प्रयत्न किया किन्तु वे असफल रहे। समय-समय पर छोटे-छोटे बलवे होते रहे। किन्तु सबसे बड़ा भयंकर और संगठित विद्रोह १८५७ ई० में हुआ। इसमें नाना साहब और कुंवर सिंह का प्रमुख हाथ रहा। इन्हीं में झांसी की रानी लक्ष्मी बाई भी थीं। जिन्होंने झांसी एवं आस पास इलाकों में अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये।

जीवन वृत्त—फिरंगियों के शिकंजे से देश को स्वतन्त्र करने के लिये १८५७ ई० की क्रान्ति में झांसी एवं आस-पास के लोगों ने अपनी मातृभूमि को अपने खून से सींचा। झांसी में क्रान्ति का नेतृत्व लक्ष्मी बाई कर रही थीं। बिहार एवं संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) के युद्ध क्षेत्र में कुंवर सिंह तथा महाराष्ट्र में नाना साहब एवं नागपुर एवं सतारा में तात्या टोपे ने उग्र भयानक क्रान्ति का संचालन कर अपनी चतुराई और प्रतिभा का परिचय दिया।

लक्ष्मी बाई का जन्म बनारस में कार्तिक वदी १४ संवत् ८९१ विक्रमाब्द, तारीख १९ नवम्बर, सन् १८३५ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम मोरो पन्त जी और माता का नाम भागीरथी बाई था। बचपन में इनका नाम मनु बाई था और प्रायः इन्हें लोग छबीली पुकारा करते थे। जब मनु बाई ४ वर्ष की थीं तभी इनकी माता का स्वर्गवास हो गया। किन्तु [illegible] पिता [illegible] मनु बाई [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible]

साहब के साथ म मनु बाई की शिक्षा का प्रारम्भ होता है। इनकी बुद्धि बडी ही कुशाग्र थी। खेल खेल म ही इन्होने थोडी-बहुत शिक्षा पायी।

सन् १८४२ ई० म झाँसी के राजा श्री गगाधर राव के साथ मनु-बाई के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। ससुराल म आने पर मनु बाई महारानी लक्ष्मी बाई के नाम से पुकारी जाने लगी।

लक्ष्मी बाई को एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था किन्तु दुर्भाग्यवश तीन महीने के पश्चात ही मृत्युकाल से उठ गया। इस पुत्र शोक से राजा गगाधर राव का बडी गहरी चोट पहुँची और व उसी दुख से बीमार पड गये। इस पुत्र शोक को दूर करने के ६ साल से किसी बालक का गोद लेने की बात सोची गई। अन्त समीपस्थ कुटुम्ब म ही से एक पचवर्षीय पुत्र का दामोदर राव नामकरण कर गोद लिया गया। इससे महाराज गगाधर राव की अवस्था म कुछ तो सुधार अवश्य हुआ। किन्तु पुन वे बीमार पड गये और अततोगत्वा व २१ नवम्बर सन १८५३ ई० को उनकी मृत्यु हो गई।

महाराजा गगाधर राव की मृत्यु के उपरान्त महारानी लक्ष्मी बाई ने झासी राज्य का प्रबन्ध स्वय अपने हाथो म लिया। वे स्वय मर्दाना वेश म दरबार किया करती थी। उस समय भारत का लॉर्ड डलहौसी था। उसने देश के भीतर के देशी राज्यो को हडपने की नीति अपनायी। डलहौसी की नीति के शिकार नागपुर, सतारा, अवध इत्यादि राज्य हो चुके थ। उसकी गद्धदृष्टि झांसी पर भी पडी। और झांसी को उसने ७ मार्च १८५४ को ब्रिटिश राज्य म मिला लिया। इससे झासी के लोग बडे ही क्रुद्ध हुए। लक्ष्मी बाई ने उमेशचन्द्र वकील और एक यूरोपीयन को कोर्ट आफ डाईरेक्टर लन्दन म भी भेजा किन्तु उसका कोई भी परिणाम न निकला।

डलहौसी ने राज्य तो लिया ही। उसने धर्म शास्त्र की ओर भी उँगली उठाई और दत्तक पुत्र की नीति का उल्लघन किया। हिन्दू धर्म शास्त्रो नुसार दत्तक पुत्र भी औरस व अपने पुत्र की भाँति उसकी सारी सम्पत्ति का अधिकारी माना जाता है। धर्म का आघात होने स हिन्दुओ के हृदय म द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसी अग्नि ने सन सत्तावन १८५७ ई० को विद्रोह का रूप धारण किया। लक्ष्मी बाई जैसी अग्रेजो पर विश्वास रखने वाली महिला को भी विद्रोहियो म शामिल कर लिया गया।

झासी की रानी अग्रेजो की उस क्रूरनीति स अत्यन्त क्रुद्ध हुई। कुछ समय तक तो उन्होंने क्रान्ति म भाग नही लिया। किन्तु बाद म उन्होंने

सेना का संगठन कर अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। उसका दमन करने के लिये सर ह्यूरोज, झाँसी की ओर आया। उसने २३ मार्च, १८५७ को युद्ध की घोषणा की। रानी ने स्वयं सेना का नेतृत्व कर अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिये। पर कुछ स्वार्थी व्यक्तियों ने अंग्रेजों की कूटनीति में आकर शहर के पश्चिमी दरवाजे का भेद बता दिया। जिससे अंग्रेजी सेना शहर में प्रवेश पा गई। झाँसी की सेना ने उसका सामना किया। इसी समय दूसरा द्वार भी टूट गया, जिससे गोरी सेना अधिक संख्या में आ गई। २४ मार्च, से ३१ मार्च तक घनघोर युद्ध होता रहा पर जीत किसी की नहीं हो सकी। रानी ने अपनी सहायता के लिए नाना साहब के पास पत्र भेजा। नाना साहब अपने प्रधान सेनापति तात्या टोपे को २०००० फौजों के साथ झाँसी भेज दिया। किन्तु तात्या चंदेरी और चरखारी के युद्ध में जीत होने से राग-रंग में मग्न था। जब वह झाँसी पहुँचा तो उसकी सेना पर तोपें चलने लगीं। कुछ देर तक तो युद्ध जमकर हुआ। किन्तु बाद में तात्या की सेना परास्त होकर कालपी लौट आई।

अब रानी की दशा चिन्ताजनक हो गई। अंग्रेजों के धावे बार-बार हो रहे थे। पर झाँसी की सेना भी उनका मुकाबला अदम्य उत्साह एवं साहस से कर रही थी, किन्तु जीत की सम्भावना न देख महारानी ने किले से निकल चलने की राय दी। सौ मजबूत वीरों के साथ महारानी बाहर की ओर निकल पड़ी। दत्तक पुत्र दामोदर राव को धायी ने पीठ पर बाँध लिया और कालपी के लिये रवाना हो गई। ५वीं अप्रैल को झाँसी पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इधर रानी ने २४ घंटे में १०२ मील का रास्ता तय करके कालपी पहुँची। जब ह्यूरोज को मालूम हुआ कि पुनः संगठित होकर झाँसी पर चढ़ाई करने की योजना बन रही है तो वह कालपी के लिये प्रस्थान किया। कालपी से ६ मील दूर गुलावली गाँव में ही युद्ध शुरू हो गया। [illegible] के अधीन ग्वालियर की सेना ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई की, [illegible] विद्रोहियों की अवश्य हुई किन्तु उस विजयोल्लास में दुर्बलता [illegible] गया।

दूसरे दिन मेजर कोट की सेना दलापुर में पहुँच गई। अब यहीं पर जमकर युद्ध हुआ। इसमें अंग्रेजों की जीत हुई और कालपी पर उनका अधिकार हो गया।

अब यहाँ से रानी और तात्या टोपे भाग गये। ३० मई, १८५८ को उन्होंने ग्वालियर पर कब्जा कर वहीं पर डेरा डाला। इस बीच में राव

साहब और तात्या टोपे ने ग्वालियर के धन को राग रंग में पानी की तरह बहाना शुरू कर दिया। इसी बीच ५ जून को सेनापति नेपीयर की अधीनता में अंग्रेजी सेना ने मुरार की छावनी पर अधिकार कर लिया। १७ जून, १८५८ को ब्रिगेडियर स्मीथ ने युद्ध का डंका बजा दिया। सर ह्यूरोज ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया। पर वह परास्त हो गया। दूसरे दिन पुन दुर्ग पर आक्रमण किया गया। इस बार ग्वालियर की सेना पीछे हट गई और रानी की सेना अंग्रेजों के बीच घिर गई। अब रानी ने भागना ठीक समझकर शत्रुओं को नष्ट करते हुए बाहर आई। पहले दिन ही युद्ध में रानी का घोड़ा घायल होकर गिर पड़ा। जिससे मृत्यु हो गई। आज वे एक नये घोड़े पर सवार थी, पर रानी का पीछा अंग्रेजी सेना कर रही थी। पर दुर्दैव से सामने एक नाला आ गया। नया घोड़ा होने के कारण वह उसे नहीं फांद सका और वहीं अड़ गया। तबतक अंग्रेजी सेना भी आ पहुँची। अब रानी अकेली और अंग्रेजी सेना अधिक। फिर भी हिम्मत न हारी और मरते दम तक उन्होंने शत्रुओं से पूर्ण बदला लिया। घायल रानी को पास ही बाबा गंगादास की कुटिया में ले गये। वहीं पर ज्येष्ठ शुक्ल ७ संवत १९१४ को इनका स्वर्गवास हो गया। रामचन्द्र राव नामक भृत्य ने उनकी लाश को घास की चिता पर रखकर जला दिया। मृत्यु के समय उनकी अवस्था २, वर्षों की थी।

इसी तरह —

> दिया गई पथ, सिखा गई, हमको जो सीख सिखानी थी।
> खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।

आज रानी लक्ष्मी बाई हमारे मध्य नहीं है। पर उनकी स्मृति हमारे मानस पटल और हृदयपटल पर सदैव अंकित रहेगी। आज भी झांसी आवाद है। जो भी जाते हैं, उन्हें अकस्मात रानी की याद आ जाती है और श्रद्धांजलि स्वरूप दो चार अश्रु सुमन बिखेर कर चले आते हैं। धन्य थी वह वीर रमणी और धन्य थी वह भूमि जिसने ऐसी महिला को जन्म दिया। आज आवश्यकता है देश को ऐसी ही रमणी की जो देश के नव निर्माण में और समाज के नवोत्थान में सक्रिय हाथ बटाये। जन-जन में जागृति पैदा कर, जिसे देखकर विश्व की आँखें चकाचौंध हो जाय।

शिक्षायें —पढ़ने लिखने में सदा मन लगाना चाहिये। बचपन से ही निडर होना चाहिए। कभी भी उत्साह मन्द नहीं होना चाहिये। अन्याय

और अधम के विरुद्ध लड़ने के लिये सदा तत्पर रहना चाहिये। अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता कायम रखने के लिये सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये। एक साथ संगठित होकर दुश्मनों से लड़ना चाहिये। दुश्मनों से पीछे कभी भी नहीं हटना चाहिये। किसी तरह की विकट परिस्थिति आ जाने पर भी विकल नहीं होनी चाहिये और धैर्य से काम लेना चाहिये। सब प्रकार के कष्टों को मुस्कुराते हुए करना चाहिये। कोई भी काम निष्काम भाव से सेवा के लिये होना चाहिये और कार्य करने के पूर्व उसके फल की आशा नहीं करनी चाहिये।

प्रश्न

१ सन् १८५७ की क्रान्ति के होने के कौन-से कारण थे ?
२ क्रान्ति की पृष्ठभूमि को किन किन लोगों ने तैयार किया और उसमें उन्होंने कौन सा कार्य किया ?
३ इस क्रान्ति में रानी लक्ष्मी बाई का कौन-सा हाथ रहा ?
४ रानी लक्ष्मी बाई का जीवन संक्षिप्त में प्रस्तुत करें
५ रानी लक्ष्मी बाई की प्रसिद्धि के कौन-से कारण हैं ?
६ १८५७ ई० की क्रान्ति के कौन-से परिणाम हुए ?
७ क्या हम अंग्रेजों की नीति से सहमत हैं ?
८ उन्होंने भारतीयों की रक्षा के लिये कौन सा काम किया ?
९ ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिये डलहौसी ने कौन सी नीति अपनाई और उसके क्या परिणाम हुए ?
१० किन किन कारणों से १८५७ ई० की क्रान्ति महान् है।
११ क्या यह मात्र सैनिक विद्रोह था या जन आन्दोलन।
१२ लक्ष्मी बाई के जीवन से आपको कौन सी शिक्षायें प्राप्त होती हैं।

---

२३ जुलाई—तिलक जयन्ती

पूर्व तयारी—दो दिन पूर्व सभी को तिलक जयंती की सूचना दे दी जायगी। जयंती के दिन विशेष रूप से सफाई और सूत्र-यज्ञ करेंगे। सूत्र-यज्ञ में रामायण का पाठ होगा। सूत्र-यज्ञोपरांत गीता और गीता रहस्य का पाठ किया जायगा। इसके बाद कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया जायगा। स्वतंत्रता का इतिहास भी स्पष्ट किया जायगा तथा यह बतलाया जायगा कि श्री तिलक ने स्वतंत्रता के आंदोलन में किस प्रकार और कितना सहयोग देना पड़ा। फिर इनके महान जीवन पर भी दृष्टिपात करते हुए यह स्पष्ट किया जायगा कि इन्होंने अपने जीवन में कौन कौन से महत्वपूर्ण कार्य किये। गांधी एवं अन्य नेताओं के साथ तिलक की तुलनात्मक विवेचना भी की जायगी और साथ ही तिलक की महानता पर भी दृष्टिपात किया जायगा। इसी प्रकार अनेक चर्चाएँ चलेंगी। अन्त में इन सभी लेखों एवं भाषणों को संकलित कर पुस्तका कार रूप दे देंगे और पुस्तकालय में सुरक्षापूर्वक रखवा देंगे।

जन्म-स्थान का भौगोलिक परिचय—तिलक का जन्म महाराष्ट्र के रत्नागिरि में हुआ था। महाराष्ट्र एक प्रायद्वीप है। यह आंचल महाराष्ट्र राज्य में पड़ता है। महाराष्ट्र एक पहाड़ी जगह है। पथरीली जमीन रहने के कारण उपज कम होती है। अतः वे लोग स्वभावतः कठिन परिश्रमी में हृष्ट-पुष्ट एवं मजबूत होते हैं। यहाँ पर वर्षा कम होती है। गर्मी विशेष पड़ती है किन्तु समुद्र निकट रहने के कारण कुछ ठंढक रहती है।

जन्मकाल का ऐतिहासिक परिचय—जब गांधी का जन्म हुआ था उस समय अंग्रेजों के पैर भारत में अच्छी तरह जम चुके थे। कुछ हिस्सों में फ्रेंच भी राज्य कर रहे थे। स्वतन्त्रता के लिए होड़ मची हुई थी। इस के बढ़ते इन लोग राजनीतिक अखाड़े में कमर कस कर उतर रहे थे। फिरोजशाह मेहता, दादा भाई नौरोजी एवं महादेव गोविन्द रानाडे इत्यादि प्रमुख नेताओं में से थे। ये लोग देश की जनता को जागृत कर रहे थे—उत्प्रेरित कर रहे थे। उनमें क्रान्ति के अंकुर को प्रस्फुटित कर रहे थे। गत १८५७ ई० की क्रान्ति समाप्त हो चुकी थी किन्तु क्रान्ति की चिनगारियाँ अभी भी लोगों में वर्त्तमान थी। लोग इन चिनगारियों को सुलगाने का अथक प्रयास

चर रहे थे जिनपर वर्षों से राख पड़ गया था और इसी शांति की वेला में महामति लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने हम भारतियों की आग को सर्वजनहिताय को सहारा दिया तथा जनजीवन के विचारों में नूतनता लाई। लोग पुनः नवीन तथा जागरूक हुए। अंधकार में एक सुनहरी किरण पाकर मानो आगे बढ़ने लगे। इसी प्रेरणा के बल से उग्र होकर हमने अपनी प्यारी स्वतन्त्रता प्राप्त की।

जीवन वृत्त —भारतीय आन्दोलन की महान् प्रतिभा एवं विशिष्ट स्थान रखते हैं। ये उग्र स्वभाव के थे और महाराष्ट्र में ही सर्वप्रथम राष्ट्रीयता की उत्पत्ति हुई जो तिलक जैसे योग्य देशभक्त तथा नम्रता को पाकर समस्त देश में फैल गई। बाल गंगाधर तिलक का जन्म २३ जुलाई १८५६ ई० को महाराष्ट्र के रत्नागिरि में हुआ था। महाराष्ट्र में इस तरह के राष्ट्रीय वीर का जन्म इसके पूर्व शिवाजी के बाद हुआ था। ये चितपावन ब्राह्मण थे और [illegible] के वंशज थे। इनका बचपन का नाम केशव था। लोक-व्यवहार में इनका नाम बलवन्त राव तिलक था। बचपन का नाम बाल था। यही नाम आगे चलकर विश्व प्रसिद्ध हो गया।

लड़कपन से ही ये बड़े मेधावी थे। इनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। इनकी स्मरण शक्ति बड़ी प्रखर थी। इनकी अधिकांश पढ़ाई घर पर ही हुई थी। ऐसा कहा जाता है कि इनको प्रतिदिन श्लोक याद करने के लिए दिया जाता था और [illegible] दिया जाता था। इस प्रकार बचपन में ही उन्होंने बहुत-से सुन्दर श्लोकों का संग्रह कर लिया था। जब ये दस वर्ष के थे तभी इनकी माता की मृत्यु हो गई। १८७० ई० में पिता चल बसे। अब इनके पालन पोषण का भार चाचा और चाची पर पड़ा। इनके चाचा और चाची इनको बहुत मानते थे। ये भी चाचा चाची [illegible] थे। १८७१ ई० में जब इनकी शादी हो गई तो इनके चाचा चाची बड़े [illegible] थे।

तिलक की पूर्व शिक्षा स्कूल में हुई थी। यहाँ पर इन्होंने दो वर्षों में मैट्रिक परीक्षा समाप्त की थी। १८७२ ई० में इन्होंने इन्ट्रेंस पास किया। इसके बाद उन्होंने एफ० ए० और पुनः बी० ए० पास किया। १८७७ ई० में एम० ए० की परीक्षा दी। किन्तु अनुत्तीर्ण हो गये। १८७९ ई० में इन्होंने एल० एल० बी० पास किया।

इनमें बड़ी देश सेवा की भावना थी। केसरी और मराठा नामक दो पत्रिकाओं का निकलना जो अबतक निकल रहा है। सन १८८१ ई० में

'९७ ई० के बीच म उन्होने पत्रो म छपे लेखो द्वारा सार्वजनिक जीवन म सक्रिय हाथ बटाकर अपनी निर्भयता और विद्वता का परिचय दिया। धीरे धीरे उनकी लोकप्रियता बहुत बढ गई। वे जनता म देशभक्ति एव राष्ट्रीयता की भावना को उत्तेजित करना चाहते थे। शिवाजी के उत्सवो से उन्होने जनता को राष्ट्रीयता की शिक्षा दी। इससे वे जनता के बीच बहुत लोकप्रिय हो गये। अब व लोकमान्य कहलाने लगे। वे कहा करते थे कि गीता के उपदेशानुसार तो हम गुरुओ और सम्बन्धियो का भी सहार कर सकते हैं और हम किसी बुराई के पात्र नही होंगे यदि हमने यह काय स्वार्थ हित की भावना से नही किया है। इस प्रकार उन उत्सवो के द्वारा उन्होने केवल जनता को जाग्रत ही नही किया प्रत्युत राजनैतिक आदोलन म लडने योग्य बना दिया। अकाल पीडित जनता की सेवा करने के लिये उन्होने एक स्वय सेवक दल का सुसगठन भी किया।

पूना म प्लेग का प्रकोप जोर था। ऐसे समय म दो नवयुवको ने प्लेग कमिश्नर मिस्टर हैण्ड और एक अन्य अग्रज को गोली से मार दिया। सरकार की ओर स उन पर राजद्रोह का मुकदमा चला और डेढ वर्ष तक क रावास दण्ड दिया गया।

महाराष्ट्र म राष्ट्रीय आदोलन को सुसगठित करने तथा शिवाजी की स्मृति का पुन जाग्रत करने का श्रेय तिलक जी को ही है। १८८९ ई० म कांग्रेस म प्रवेश किया। इनका विचार उग्र थ और कांग्रेस के गरम दल के नेता थे। इनका आदर्श था—स्वावलम्बन, सेवा और कष्ट सहन।

१९०६ ई० म उनकी लोकप्रियता पराकाष्ठा पर पहुँच गयी थी। उनका प्रभाव लोगो क हृदय पर खूब पड चुका था। १९०८ ई० मे तिलक को राजद्रोह के जुम म ६ वर्षों का सजा हो गयी। उन्हें निर्वासित कर छ वर्षों के लिए जेल भेज दिया गया। तिलक के साथ इस घोर अन्याय से भारतीय क्षुब्ध हो उठे। जेल म ही उन्होने तीन अमूल्य ग्रथो की रचना की। जिनका नाम 'दो आर्कि-टिक' 'होम ऑफ दी वेदाज' और गीता रहस्य है। इनम 'गीता रहस्य' का विचार बडा ही व्यापक सुदृढ तथा परिपक्व है जो तिलक जी की जाज्वलत प्रतिभा का ज्वलन्त प्रतीक है। तिलक आपादमस्तक राष्ट्रवादी नेता थ। व सदा कहा करत थ कि कांग्रेस की नर्मी और राजभक्ति स्वतत्रता प्राप्ति के योग्य नही है। व प्रथम भारतीय थ जिन्होने कहा था—"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा। (Swaraj is my birth right

and I will have it) उनका यह दृढ़ विश्वास था कि विदेशी शासन कितना भी अच्छा क्यों न हो स्वशासन से कदापि अच्छा नहीं हो सकता ।

१९०७ ई० में कांग्रेस से अलग हो गये और एनीबेसेन्ट के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर होमरूल आंदोलन में काम करने लगे ।

आखिरकार १ अगस्त १९२० ई० में जिस दिन असहयोग आन्दोलन आरम्भ होनेवाला था म० तिलक इस संसार से चल बसे । यद्यपि आज इनका भौतिक शरीर इस संसार में नहीं है फिर भी उनका व्यक्तित्व प्रतिभा एवं दृढ़ विचार भारतीयों के हृदय पर आच्छादित है । उनके ये विचार और प्रतिभा भारतीयों का ही नहीं वरन् समस्त मानव और सारे विश्व का युग-युग तक पथ प्रदर्शन करता रहेगा ।

शिक्षायें —देश के लिए उत्सर्ग होने के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए । देश की सेवा करनी चाहिए । देश की आजादी को कायम रखना चाहिए । अपने व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के द्वारा दूसरों के मन पर विजय प्राप्त करना चाहिए ।

प्रश्न

(१) तिलक के समय देश की क्या अवस्था थी ? संक्षेप में तिलक की जीवनी प्रस्तुत करें ।
(२) कांग्रेस के बारे में क्या जानते हैं ?
(३) नरम दल और गरम दल क्या है ?
(४) तिलक किस दल के नेता थे ?
(५) इनकी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक कौन है और क्यों लिखी गयी ?

६ अगस्त—भारत छोडो—आन्दोलन

पूर्व तयारी—इसकी सूचना एक दिन पूर्व सभी छात्रा एवं शिक्षकों को दी जायगी। दूसरे दिन प्रभात फेरी होगी। निकटवर्ती ग्रामों में ग्रामीणों के साथ ग्राम-सफाई भी होगी। सज धजकर स्कूल आयेंगे। स्कूल में ध्वजोत्तोलन होगा। आज विशेष रूप में सूत्र-यज्ञ होगा। पुनः सांस्कृतिक सभा का प्रदर्शन होगा। इसमें लोग भाषण देंगे निबंध पढ़ेंगे और संक्षेप में १९४२ की क्रान्ति पर प्रकाश डाला जायगा। यह भी बतलाया जायगा कि बम्बई में ८ अगस्त को किस प्रकार भारत छोडो प्रस्ताव पास किया गया और इसका क्या परिणाम हुआ। साथ ही १८५७ की सशस्त्र क्रान्ति के साथ इस क्रान्ति का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

'४२ की क्रान्ति का संक्षिप्त इतिहास

दूसरे युद्ध के प्रारम्भ होने पर ब्रिटिश सरकार ने भारत को जबर्दस्ती अपनी ओर से मित्रयुद्ध में सम्मिलित होने की घोषणा कर दी। इसमें भारतीयों से पूछ-ताछ तक नहीं किया गया। जब कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से भारतीय स्वतंत्रता के ध्येय को स्वीकार करने के लिए कहा तो कोई भी संतोषप्रद उत्तर नहीं मिला। कुछ ही दिनों के उपरांत गांधीजी के सफल नेतृत्व में कांग्रेस की ओर से व्यक्तिगत अवज्ञा आन्दोलन (Individual civil Disobedience movement) चलाया गया। इसमें देश के अनगिनत नर नारियों ने सहर्ष सक्रिय भाग लिया।

१९४१ के दिसम्बर मास में—जापान ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध महासमर की प्रचण्ड ज्वाला में कूद पड़ा। जापानी सेनायें दक्षिण पूर्वी एशिया पर अपना आधिपत्य जमाती हुई बर्मा में घुस गईं। इसी हालत में भारत की पूर्वी सीमा पर खतरा पैदा हुआ। गांधीजी को धीरे धीरे यह विश्वास हो गया कि भारतीय समस्याओं के जटिल होने के कारण अंग्रेजों का इस देश में रहना था। वे कहा करते थे—भारत और ब्रिटेन की रक्षा उसी में है कि अंग्रेज ठीक समय में भारत से अनुशासित ढंग से हट जायँ और उन्होंने "भारत छोडो" का प्रस्ताव लोगों के समक्ष रखा।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने बम्बई में ८ अगस्त, १९४२ को एक प्रस्ताव पास करके आन्दोलन का महत्व समर्थन किया। इस प्रस्ताव के प्रमुख अंश ये थे—

जो घटनाएं प्रतिदिन घट रही हैं उनसे कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की यह धारणा पुष्ट होती जा रही है कि भारत में ब्रिटिश शासन का अन्त अविलम्ब होना चाहिए। भारत की स्वतन्त्रता न केवल भारत के हित में आवश्यक है बल्कि सुरक्षा के लिए और नाजीवाद, फासिस्टवाद, सैनिकवाद और अन्य प्रकार के साम्राज्यवाद तथा एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्र के आक्रमण का अन्त करने के लिए भी। प्रस्ताव में सत्याग्रह आन्दोलन के सम्बन्ध में कहा गया था—समिति भारत की स्वाधीनता और स्वतन्त्रता के अविच्छेद्य अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली से और अधिक से अधिक विस्तृत परिमाण पर एक विशाल सत्याग्रह आरम्भ करने की स्वीकृति देने का निश्चय करती है। (पट्टाभि सीतारमय्या—कांग्रेस का इतिहास) इस पुनीत अवसर पर अपने भाषण की समाप्ति करते हुए गांधीजी ने कहा था—
'There is no room for negotiations There is no questions of more chance This is an open rebellion You have to do or die' सत्याग्रह प्रारम्भ करने के पहले गांधीजी वायसराय से मिलना चाहते थे। उपर्युक्त प्रस्ताव पास होने के पश्चात् रात में सारे नेता पकड़ लिए गए। * अगस्त के सुबह से बड़े बड़े नेताओं और कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की भी गिरफ्तारियाँ हुई। अंग्रेज जानते थे समझते थे कि नेताओं को पकड़ कर देश में क्रान्ति की चिनगारी बुझ जायगी किन्तु इसका परिणाम उल्टा हुआ। नेताओं की गिरफ्तारी के बाद सारे देश में विद्रोह की आग भड़क उठी। नेताओं की अनुपस्थिति में जनता ने ब्रिटिश सरकार की चुनौती का बड़ी निर्भयता से उत्तर दिया। लोगों ने क्रान्तिकारी कार्य—तार काटना, रेलों की पटरियाँ उखाड़ना, थाना, डाकघर लूटना आदि शुरू कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने भी दमन चक्र वेग से चलाया। अनेकों स्थानों पर गोलियाँ चलीं। हजारों की संख्या में लोग मारे गए, बहुत बड़ी संख्या में लोग घायल हुए और यातना की नाना प्रकार की इत्यादि की गई। स्त्रियों तथा वृद्धों तक को बिना मुकदमा चलाए जेल में ठूंस दिया गया। यही था सन '४२ की क्रान्ति।

शिक्षाएं—अपने देश की स्वतन्त्रता को बनाए रखना चाहिए। सबको एक साथ मिलकर रहना चाहिए। क्योंकि United we stand divided

we fall' एक दूसरे की सहायता करते रहनी चाहिए। सभा-सुसाइटियों में भाग लेना चाहिए और इसमें अपने विचारों को भी लोगों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। जनकार्य में हाथ बटाना चाहिए और उसमें सहयोग देना चाहिए। स्वतन्त्रता का पौधा सदा रक्त से सींचा जाता है इसे सदा याद रखना चाहिए।

प्रश्न

१ ४२ की क्रान्ति के पूर्व भारत की कैसी अवस्था थी?
२ ४२ की क्रान्ति क्यों हुई?
३ इसका प्रस्ताव कहां और किसने पास किया?
४ इस क्रान्ति का संक्षेप में विवरण दें और बतायें कि इस क्रान्ति का परिणाम क्या हुआ।



१५ अगस्त :—स्वतंत्रता-दिवस

पूर्व तयारी —एवं आयोजन का विधान २६ जनवरी में देख लें।

इतिहास —सच पूछें तो १५ अगस्त के पीछे भारतीय स्वतंत्रता का सघर्ष कष्टाजनक तथा वीरतापूर्ण इतिहास छिपा हुआ है। यह हमारे, उमगों, उत्साहों का मार्मिक किन्तु गौरवपूर्ण इतिहास है। यों तो स्वतंत्रता की नींव सन् १७५७ की पलासी की लड़ाई में ही प्रारम्भ हो गया था धीरे धीरे यह जोड़ पकड़ता गया और १८५७ ई० में यह विद्रोह का भीषण रूप लेकर फूट पड़ा किन्तु आजादी नहीं मिल सकी। १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना हुई। तिलक आये गोखले आये। तिलक ने घोषणा की स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है मैं इसे लेकर रहूँगा। (Swaraj is my birth right and I will have it) पुनः गांधी जी का प्रादुर्भाव हुआ और उनके नेतृत्व में अहिंसात्मक क्रान्ति फिर से शुरू हो गई। सुषुप्त जनता ने अँगड़ाई ली। जनता ने अपनी नींद को छोड़ कुर्बानी की भावना उभार पैदा और क्रान्ति में हाथ बँटाने लगी। जवाहर, पटेल और राजेन्द्र बाबू राष्ट्रीय क्रान्ति के रंगमंच पर उतरे। विजय का प्रतीक सत्य और अहिंसा के परम पुनीत अस्त्रों से बापू ने तोप और तलवारों का मुकाबला किया। १९३० ई० को २६ जनवरी को श्री जवाहरलाल ने पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा की। अंग्रेजों ने भारत पर दमनचक्र जोरों से चलाया। ९ अगस्त १९४२ ई० में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन जारी किया गया। अंग्रेजों ने फूट डालो और शासन करो' (Divide and rule) की नीति अपनायी। भारत की एकता में [illegible] कर लिया और इसे विच्छिन्न कर लिया। स्वतन्त्रता की बलि पर [illegible] ने अपने को उत्सर्ग कर दिया। नेताओं ने आजादी के लिए [illegible] का परित्याग कर लिया। ब्रिटिश सरकार ने क्रान्ति को दबाने के लिए [illegible] की किन्तु गांधीजी के सफल नेतृत्व में सरदार वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, [illegible] प्रवृत्ति नेताओं ने सक्रिय हाथ बटाया था। इन नेताओं के द्वारा [illegible] में [illegible] जनता में और सम्पूर्ण समाज के आगे अंग्रेजों को [illegible] गये। हमारा बलिदान, हमारा उत्साह [illegible]। बापू का सपना साकार हुआ। [illegible]

१५ अगस्त, १९४७ ई० को यनवन प्रकारण हम स्वतन्त्र हुए—हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। भारत माँ की बेड़ियाँ टूटी। हम नव प्रभात के दर्शन हुए। हमारे चिर-सञ्चित सपने साकार हुए। इस खुशी में सोल्लास हम गा उठें—

'हम सबकी आँखों का तारा,
सब देशों से अनुपम न्यारा
जगत पिता का परम दुलारा
बच्चों का यह प्यारा है।
भारत देश हमारा है।

१५ अगस्त हर्षोल्लास का दिन है। उस दिन सदियों की तपस्या पूर्ण हुई। उस दिन कोटि-कोटि जनता की आशायें पूरी हुईं। युगों के उपरान्त भारत के भाग्य ने करवट बदला। अपना राज्य हुआ। इसी दिन के लिए सहस्रों भारतीय फाँसी के तख्ते पर हँसते हँसते झूल गये। बहुतों ने अपनी मूक शहादत दी, अपनी कुर्बानी की, जीवन के सारे सुखों को ठुकरा दिया। इसी दिन के शुभागमन के लिए लाखों भारतीयों को जल यातना सहनी पड़ी और कितने तो कारावास में ही घुल घुल कर मर गये। यही वह दिन है—१५ अगस्त स्वतन्त्रता दिवस। पर इस दिन भी हम पूर्ण स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सका—औपनिवेशिक स्वराज्य ही मिल सका।

दीपक तले अँधेरा होना ही है। उस अँधेरे की तरफ कोई ध्यान नहीं देता। इस १५ अगस्त के दिन बहुजनों ने खुशी मनाई होगी, हर्षोल्लास में दीपक जलाये होंगे और मनायी होगी अरमानों की होली भी। किन्तु कुछेक लोगों ने नहीं। उनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जिनकी दुनियाँ में अब भी अन्धकार ही अन्धकार था। उनके स्थान रहने तक का भी ठिकाना नहीं था। दाने दाने को तरस रहे थे। दर दर भटक कर सेठ का धूल फाँक रहे थे। पश्चिमी पंजाब और पूर्वी बंगाल से आये हुए शरणार्थी थे। जिनकी बड़ी बुरी दशा हो रही थी। उनका भी मकान था, जर जमीन था फिर भी शरणार्थी थे। मगर उन्होंने इन सारी वस्तुओं का त्याग कर दिया—बस इसी १५ अगस्त के लिए। उस दिन सहस्रों विधवायें आठ-आठ आँसू रोई होंगी, अपने पति की दुखद मृत्यु पर सहस्रों अनाथ बच्चे बिलख बिलख कर सिसक-सिसककर रोये होंगे अपने पिता की असामयिक मृत्यु पर किन्तु किसी ने अपनी एक दृष्टि डाली होगी इन असहायों और अनाथों पर? कदापि किसी ने नहीं।

अनेकानेक कठिनाइयों और त्रुटियों के उपरान्त भी १५ अगस्त भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में एक देदीप्यमान नवोदित प्रकाश है आता है जिसकी

रचना में हम आज तक की कमजोरियों को आद्योपान्त पढ़ सकते हैं। देश जगा है, हम जगे हैं। अब हम मनुष्यता में सत्य, अहिंसा के मार्ग पर चल रहे हैं। पन्द्रह अगस्त का निष्पक्ष है सन्देश है—एकता ही बल है और फूट विनाशक है।' इस प्रकार पन्द्रह अगस्त आया। विदेशी सत्ता की समाप्ति हुई। हमें इतना अधिकार मिला कि अपने देश को बनायें या बिगाड़ें। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि १५ अगस्त १९४७ ई० में हम उत्तरदायी नागरिक हो गये हमारे ऊपर भारत वर्ष को बनाने या बिगाड़ने का भार आ गया। इसी उत्तरदायित्व की प्राप्ति में हम खुशियाँ मनाते हैं। हम सारे कष्टों को भूल जाते हैं, भारत के नव निर्माण में सन्नद्ध होते हैं और विभाजन एवं विदेशियों द्वारा उजाड़े हुए भारत को पुनः हरा भरा करने का बीड़ा उठाते हैं। इसी उत्तरदायित्व की भावना के साथ हम स्वाधीनता दिवस को बड़ी धूमधाम तथा हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं।

शिक्षायें—हम अपनी आजादी को किसी भी मूल्य पर कायम रखना चाहिए। इस दिन राष्ट्रीय झण्डे का सम्मान में घर-घर विधिपूर्वक फहराना चाहिए और देश को सदैव समृद्ध समुन्नत एवं शक्तिशाली बनाने का शपथ ग्रहण करना चाहिये। भावनाओं मुसीबतों आपत्तियों, क्षमा और तूफानों में भी अपने देश के झण्डे को सदा ऊँचा रखना चाहिए। अपने कर्तव्य-पालन का व्रत लेना चाहिए हम त्याग और उत्सर्ग का शपथ लेना चाहिए और अपनाना चाहिए सत्य अहिंसा शान्ति सहिष्णुता प्रेम और एकता को। हम बुद्ध महावीर और गाँधी के अनुगामी हैं। अतः हम सत्य अहिंसा को अपनाये रखना चाहिए। हम इस प्रकार का प्रयास करना चाहिये कि भारत हिमालय के शिखर से समस्त विश्व के प्राणियों को मित्रता शान्ति प्रेम सद्भावना एकता और विश्व-बन्धुत्व का सन्देश सुनाकर उन्हें अनुप्राणित कर सके।

प्रश्न

१ पन्द्रह अगस्त क्यों मनाया जाता है? इसका इतिहास संक्षेप में प्रस्तुत करें
२ पन्द्रह अगस्त का क्या महत्व है और इससे हमको कौन-कौन सी शिक्षायें मिलती हैं?
३ क्या हम इन शिक्षाओं को अपने जीवन में उपयोग में ला सकते हैं? अगर हाँ तो कैसे?
४ इन शिक्षाओं के अतिरिक्त आपको कौन-कौन सी [illegible] प्राप्त होती हैं?

—०—

११ सितम्बर—विनोबा-जयन्ती

पूर्व तयारी —विनोबा जयन्ती की सूचना सभी छात्रों एवं शिक्षकों को दो-तीन दिन पूर्व दे देनी चाहिये। लोग इसके लिये खूब धूम धाम से तयारी करेंगे। जयन्ती के दिन प्रभात फेरी की जायगी। आज सफाई की भी वृहत योजना रहेगी। छात्र निकटस्थ गाँवों में जाकर ग्रामीणों के साथ वहाँ सफाई करेंगे। फिर सभी सजधज कर स्कूल आयेंगे। यहाँ पर विशेष रूप से दो घंटे तक सूत्र-यज्ञ करेंगे और उस सूत से कपड़े तैयार कर गरीबों में वितरण कर देंगे। इस दिन सूत्र यज्ञ में गीता का पाठ होगा। साथ ही 'गीता प्रवचन' का भी पठन पाठन होगा। सूत्र-यज्ञोपरात सभी छात्रों एवं शिक्षकों की एक सम्मिलित गोष्ठी होगी। इसमें विनोबा जी पर चर्चायें चलेंगी। लोग भाषण देंगे लेख पढ़ेंगे प्रहसन करेंगे और कविता पाठ करेंगे। अंत में प्रधान जी का प्रवचन होगा। उस दिन लोग गाँवों में जाकर सभी से कुछ रुपये पैसे दान में लेकर गरीबों में वितरण करेंगे।

देश की राजनैतिक अवस्था —विनोबा के जन्म के पूर्व देश में अंग्रेजों का एकछत्र राज्य कायम था और उसका दुर्दमनीय शासन चल रहा था। लोग आजादी की माँग कर रहे थे। पर उनकी माँग को सुनने वाला कोई न था। लाल बाल पाल गोखले आदि प्रमुख नेता राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भाग ले रहे थे। गांधी जी भी राष्ट्रीय क्षेत्र में अवतरण हो चुका था। अंग्रेज जनता पर काफी अत्याचार कर रहे थे। सभी लोग उनके पाशविक तथा पैशाचिक अत्याचार से ऊब गये थे। उससे छुटकारा पाने का द्वार खोज रहे थे। ग्राम कर गरीबों दुखियों अबलाओं और अनाथों एवं अछूतों की तबाही थी। मानवता छटपटाती रही थी। अन्याय असह्य हो चला था। सबके सब लोग ऐसी अवस्था को ऐसे व्यक्ति की कमी को महसूस कर रहे थे जो इन्हें कष्टों से उबार कर सकता। भगवान ने इनकी प्रार्थना सुन ली और विनोबा के रूप में भगवान वामन रूप धर कर उनके कष्टों के निवारणार्थ अवतरित हुए।

जन्म स्थान का भौगोलिक स्तर—विनोबा का जन्म महाराष्ट्र राज्य के कोलाबा जिले के गगोदा नामक ग्राम में हुआ था। कोलाबा पहाड़ी इलाका है। यहाँ के लोग काफी हट्टे-कट्टे और मजबूत होते हैं। यहाँ का मुख्य पेशाधार

आय थे। वहीं पर वे गांधीजी से मिले। यहा पर उन्होने बडा ही ओजस्वी भाषण दिया। इसस विनोबा बडे ही प्रभावित हुए।

कुछ दिनो के बाद म गाधीजी से मिलने के लिए अहमदाबाद साबरमती आश्रम म गये। वहाँ क वातावरण स वे अत्यन्त आकृष्ट हुए और वे वही पर रहने गये।

एकबार बीच म १९१७ ई० म उन्होने एक वर्ष क लिये बापू से छुट्टी मांगी और उसम उन्होंने महाराष्ट्र का भ्रमण किया और ठीक समय पर बापू क सामने दाखिल हो गये।

सन १९२१ मे व वर्धा म सेठ जमुनालाल बजाज के आग्रह स रहने लगे वहाँ पर पूरे आश्रम का भार उन्ही पर आ पडा किन्तु उसको उन्होंने बडी कुशलता स निबाहा। उन्होने नियमो को बनाया और आश्रमवासियो को अपनाने के लिये कहा।

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असग्रह
शरीर श्रमअस्वाद सर्वत्र भय वर्जनम्।
सर्वधर्म समानत्व स्वदेशी स्वार्थ भावना ही
एकादश सेवा की नम्रत्व व्रतनिश्चय।

इसक बाद वे कई साल तक महिला-आश्रम म भी रहे। करीब-करीब ३० वर्षों तक विनोबाजी वर्धा के समीप म ही रहे।

सन १९२३ म राष्ट्रीय झडे क जुलूस म सत्याग्रह करने पर व पहली बार कैद किए गए। थोडे दिनो के बाद काग्रेस से समझौता हुआ और सत्याग्रही छोड दिये गए।

सन् १९३० म नमक सत्याग्रह म उन्होंने सक्रिय भाग लिया। इसम भी व बन्द किए गए किन्तु कुछ ही दिनो क बाद रिहा कर दिए गए। १९३१-३२ ई० म आन्दोलन म भी जेल गए। जेल म भी वे अपना अध्ययन सम्यक रूप स करते थ। विशेष रूप स गीता का पाठ करते थ। १९३२ ई० म धुलिया जेल म गीता पर उन्होंने अपना विचार प्रकट किया। लोगो ने उसे लिपिबद्ध कर पुस्तक का रूप दिया और वही गीता प्रवचन क नाम स प्रख्यात हुआ।

सन् १९३८ म पौनार म परमधाम अर्थात स्वर्ग नामक एक आश्रम की स्थापना भी की।

सन १९३९ में व्यक्तिगत आन्दोलन में भावे प्रथम-सत्याग्रही बने और उनका नाम देश भर में फैल गया। वे तुरन्त कैद कर लिए गए और तीन महीने के बाद छोड़ दिए गए।

९ अगस्त, १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में वे कैद कर लिये गए और तीन वर्षों तक मद्रास एवं मध्यप्रान्त की विभिन्न जेलों में रहे गये। १९४५ ई० में जेल से मुक्त कर दिए गए।

धीरे-धीरे भारत का भाग्योदय हुआ और १५ अगस्त १९४७ को स्व-आजादी की प्राप्ति हुई। लोगों की तमन्नाएँ पूरी हुई और विनोबा की तपस्या सफल हुई।

इस प्रकार आ गया सन १९५१। सर्वोदय का वार्षिक अधिवेशन ८ अप्रैल को हैदराबाद के शिवरामपल्ली में होनेवाला था। इसमें विनोबा को भी बुलाया गया था। वे आश्रम से तीन सौ मील पैदल चलकर ७ अप्रैल को शिवरामपल्ली पहुँच गए। सम्मेलन समाप्त हुआ। लेकिन तेलंगाना और नालगोण्डा जिले में कम्युनिस्टों का भयंकर उत्पात मचा हुआ था। वे पैदल ही १५ अप्रैल को तेलंगाना के लिए प्रस्थान किये। १८ अप्रैल को पोचमपल्ली नामक ग्राम में इन्होंने पड़ाव किया। यहाँ पर वे गरीबों की दशा देखकर द्रवित हुए। सभा में विनोबा ने कहा कि यदि ८० एकड़ जमीन मिल जाय तो हमारा काम चल जा सकता है। यहाँ पर श्री रामचन्द्र रेड्डी प्रथम भूदानी बने और उन्होंने १०० एकड़ जमीन भूदान में दी।

इस प्रकार धीरे-धीरे भूदान का काम बढ़ा और आज इसका काम बड़े जोर-शोर से चल रहा है। साथ-ही-साथ बुद्धिदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान, साधनदान इत्यादि भी चल रहा है। अब तक भूदान में लाखों एकड़ जमीन मिल चुका है। गाँव-के-गाँव भी मिल चुके हैं। हमारी कामना है कि भगवान भारत के इस परम सन्त को दीर्घायु करें।

विनोबा के जीवन में एक खास बात है, क्योंकि वे वाणी में ओजस्विता है, हृदय में कोमलता है और आत्मा में अविनाशी विजय-शक्ति है। वे ज्ञान और साधना की मूर्ति हैं, करुणा और कर्मण्यता के अवतार हैं। वे वर्तमान युग के महर्षि हैं, मध्ययुग के परमसंत हैं और अध्यात्म युग के मत महात्मा हैं।

विनोबा निर्भय हैं, निडर हैं। वे किसी विघ्न-बाधा की परवाह नहीं करते। वे न किसी से राग रखते हैं न किसी से ईर्ष्या-द्वेष। वे न तो किसी की स्तुति ही करते हैं और न बुरा अपमान। यदि वे किसी की स्तुति

करते हैं तो केवल एक राम की। वे किसी की निन्दा भी नहीं करते। वे सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय की सोचते हैं। वे सर्व भवन्तु सुखिन की कामना करते हैं।

शिक्षाएँ—देश की पुकार पर न्योछावर होने की कामना रखनी चाहिए। बड़ों की आज्ञा का पालन एवं उनका आदर सत्कार करना चाहिए। समय का पूरा ख्याल रखना चाहिए। अपनी प्रवृत्ति एवं आचरण को सुधारना चाहिए और बुरी चीजों की ओर न ले जाना चाहिए। पढ़ने पर ध्यान देना चाहिए। साथ ही साथ स्वास्थ्य को अच्छा रखना चाहिए। शरीर को बलिष्ठ बनाना चाहिए। पैसे को भलाभाँति खर्च करने के लिए सीखना चाहिए। दीन-दुखिया की सदा सेवा और जनता जनार्दन की सदैव सहायता करनी चाहिए। जहाँ तक हो सके स्वदेशी वस्तुओं को ही अपनाना चाहिए। कभी किसी से माया मोह या ईर्ष्या द्वेष नहीं रखना चाहिए। स्वावलम्बी बनना चाहिए।

प्रश्न

१ विनोबा के जन्म के पूर्व की राजनैतिक दशा कैसी थी? विनोबा के जन्मस्थान का भौगोलिक परिचय उपस्थित करें।
२ विनोबा के बारे में क्या जानते हैं? उनका जीवनी संक्षेप में प्रस्तुत करें।
३ विनोबा की प्रथम जेल-यात्रा का वर्णन करें।
४ विनोबा के बचपन के विषय में क्या जानते हैं?
५ बापू से इनकी कब भेंट हुई और उनसे क्यों प्रभावित हुए।
६ विनोबा ने अपना आश्रम कहाँ बनवाया और उसका क्या नाम रखा?
७ भूदान की आवश्यकता क्यों पड़ी, सर्वप्रथम कब कहाँ से शुरू किया गया और कौन पहला भूदानी बना।
८ शुरू से अन्त तक भूदान की दिशा में जो प्रगति रही है उसका वर्णन करें।
९ अब तक भूदान में कितनी जमीन मिल चुकी है।
१० आजकल विनोबा कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं।
११ विनोबा और गांधी की तुलनात्मक व्याख्या करें तथा विनोबा को सन्त और महात्माओं से तुलना करें।
१२ विनोबा की मैं व्यक्तित्व क्या है तथा उनकी महानता का वर्णन करें।

३१ अक्टूबर—पटेल जयन्ती

पूर्व तयारी —जयन्ती की सूचना दो तीन दिन पूर्व ही सबों को दे दी जायगी। सब लोग पहले से ही जयन्ती की तयारी में संलग्न हो जायँगे। जयन्ती के दिन विद्यालय की उत्तम सफाई होगी। सूत्र-यज्ञ का समय भी कुछ दिया जायगा। सजाये हुए पण्डाल में लोग इकट्ठे होकर स्व० पटेल के सम्बन्ध में चर्चायें करेंगे। लोग भाषण देंगे, निबन्ध पढ़ेंगे, कविता पाठ करेंगे। बाद में सभी उपयोगी रचनाओं का संग्रह कर पुस्तक का रूप देकर प्रधान जी के पास में रख देंगे।

देश की राजनैतिक हालत —देश में आजादी के लिए संघर्ष हो रहा था। आजादी की लहर सर्वत्र व्याप्त हो चुकी थी और देशभक्ति के आवेश में प्रत्येक व्यक्ति की बोटी-बोटी फड़क रही थी। लोग क्रान्ति करते किन्तु गोरी सरकार के आगे उनकी एक न चली। न कोई अच्छा संगठन था और न अनुशासन ही। इन्हें कोई प्रेरणा देनेवाला भी तो न था। अगर थे भी तो उनमें जनता को उत्प्रेरित करने की शक्ति न थी। कोई सुदृढ़ संगठन नहीं होने के कारण वे एकबार किसी कार्य को कर नहीं सकते थे। ऐसी हालत में एक ऐसे नेता की आवश्यकता थी जो इन सारी जरूरतों को पूरा कर सके। इस अशान्ति काल में सरदार पटेल का आविर्भाव हुआ और उनके नेतृत्व में हम अंग्रेजों से टक्कर लेकर स्वतन्त्र हुए।

जीवन वृत्त —३१ अक्टूबर, १८७५ में यह सान्ध्य तारा-सा चमक उठा और चमक उठा गुजरात के करमसद का वह छोटा-सा आँगन। आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय होने से उनकी शिक्षा केवल मैट्रिक तक ही हो सकी। पुनः उन्होंने मुख्तारी पास की और गोधरा में चले आये।

कुछ दिनों के बाद वे इंगलैंड में बैरिस्ट्री पढ़ने गये। कुछ वर्षों के बाद वे वहाँ से पूरे बैरिस्टर बनकर आ गये। अहमदाबाद में अपनी प्रैक्टिस शुरू की। कुछ ही दिनों के अन्दर वे वहाँ के एक बहुत बड़े बैरिस्टरों में गिने जाने लगे। तबतक १९१८ ई० से गाँधी जी चम्पारण मे लौटे।

जालियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के पश्चात गाँधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ किया। तो वल्लभ भाई पटेल भी अपनी बैरिस्टरी पर ठोकर मारकर गाँधी जी के साथ जंगे मैदान में कमर कसकर उतर आये। गुजरात के

गाँव गाँव में घूम घूमकर उन्होंने जनता में ऐसी जागृति उत्पन्न की कि चरखे और खादी की धूम मच गयी।

सन १९२३ ई० में नागपुर में राष्ट्रीय झण्डे की मान मर्यादा की रक्षा के लिए उन्होंने पहला कदम उठाया। १९२७ ई० के बारडोली के सत्याग्रह में सरदार की गिनती सर्वमान्य भारतीय नेताओं में होने लगी और उसी समय उनके कार्य को देखकर बापू ने उन्हें सरदार कह दिया और आगे चलकर इसी नाम से विख्यात हुए। १९३० में म० गाँधी ने नमक सत्याग्रह प्रारम्भ किया। इसमें सरदार ने सक्रिय भाग लिया। वे बन्द किए गए और जेल में असह्य कष्टों का सामना करना पड़ा। सन १९३१ में कराची काँग्रेस के वे सभापति चुने गए। तबतक बापू इंगलैण्ड से लौट आये थे। उनके आते ही कुछ दिनों में पुन आन्दोलन खड़ा हुआ। इसमें सरदार भी बन्द किए गए और दो वर्षों के बाद १९३४ ई० में स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण वे कारामुक्त कर दिए गए। १९४७ ई० के चुनाव के समय दौरा करते हुए [illegible] जीवन की [illegible] पता था। [illegible] की गर्वोक्तियों के उत्तर में इन्होंने कहा था—'जब काँग्रेस का स्टीम रोलर चलेगा तो सब विरोधी [illegible] पत्थर के समान कुचल कर चौरस हो जायेंगे। सन १९४२ में भारत छोड़ो प्रस्ताव का समर्थन पटेल ने ही किया था। फलस्वरूप वे भी [illegible] नेताओं की तरह जेल में ठूँस दिए गए और १९४५ ई० में मुक्त किए गए। [illegible] वर्षों के उपरान्त १५ अगस्त, १९४७ को स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ देशी रियासतों का समस्या बड़ी सन्तापजनक रीति से सुलझाई और इस कठिन समय में पूर्ण शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित रखने का बड़ा ही महान कार्य किया और उनकी प्रसिद्धि एक अति प्रणामक के रूप में हुई।

"हमारी सदियों की कठिन तपस्या के अनन्तर हम आजादी प्राप्त हुई। हम मुक्त हुए। हमारे सपने साकार ही होने जा रहे थे कि अकस्मात वह तारा आसमान से टूट पड़ा। हम निराधार हो गये, निराश्रय हो गये। आगुआ की धारा बह चली। रो उठी सारी जनता और रो उठा सारा हिन्दुस्तान। किन्तु काल के कुटिल कराल हाथों को कौन रोक सकता है। आज हम सभी उनकी याद में नतमस्तक होकर श्रद्धा के फूल अर्पित करते हैं।

सरदार पटेल अपनी बेजोड़ संगठन तथा नियन्त्रण शक्ति में अद्वितीय थे। अमरिका के प्रसिद्ध पत्रकार गुन्थर ने कहा था—'गाँधी जी और जवाहर लाल के नेतृत्व में चलनेवाली काँग्रेस के वास्तव में भाई पटेल राजनीतिक कर्णधार हैं।' उनमें पार्टी संगठित करने की अद्भुत क्षमता थी। जिस समय

देश में हिन्दू मुस्लिम दंगा छिड गया था तो उसका जवाब उन्होंने बड़े कठोर और क्षोभपूर्ण शब्दों में दिया था—'मुसलमान यह न समझें कि लोग उनके भाले और तलवार से डर जायेंगे बल्कि आत्मरक्षा के लिए हिन्दू भी तलवार का जवाब तलवार से देंगे।' इन्हीं कारणों से भारतीय उन्हें अपनी आशा के रूप में मानते थे किन्तु आशा की कड़ियाँ अकस्मात बिखर गईं।

सरदार पटेल अनुशासन के बहुत बड़े उपासक थे। उन्हें भारत का लौह पुरुष कहा जाता था। उन्हें स्वदेश से प्रेम था। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि ऊपर से वे देखने में निष्ठुर और अभिमानी से लगते थे किन्तु भीतर से वे नारियल की भाँति कोमल, मुलायम और सरल थे। चाणक्य की भाँति शत्रु को समूल नष्ट करने में वे विश्वास रखते थे। अपने पहनाव में भी वे भारतीय किसान की भाँति सादगी पसन्द करते थे।

शिक्षायें —देश के लिए सर्वस्व त्याग करना चाहिए। सुसंगठन करने की शक्ति ग्रहण करनी चाहिए। अनुशासन प्रिय होना चाहिए। बड़ों की बात को मानना चाहिए। पापरहित सरल एवं सविनय बनना चाहिए। विघ्न बाधाओं से नहीं घबड़ाना चाहिए। सदा अपने कर्त्तव्य में दत्तचित्त रहना चाहिए। सत्य, अहिंसा और प्रेम का पुजारी होना चाहिए। सभी के साथ नम्रता का व्यवहार करना चाहिए। सादगी से जीवन यापन करना चाहिए।

प्रश्न

१ पटेल के जन्मकाल की राजनैतिक दशायें क्या थीं ?
२ पटेल ने राजनीतिक क्षेत्र में कौन कौन से महत्त्वपूर्ण कार्य किये ?
३ पटेल का नाम आज दुनिया में क्यों ऊँचा है ? इसकी चर्चा संक्षेप में प्रस्तुत करें।
४ इनका व्यक्तित्व कैसा था ?
५ पटेल के साथ गांधी जिन्ना और जवाहर लाल की तुलना करें।

—०—

महामना पं० मदनमोहन मालवीय
१२ नवम्बर

पृष्ठ भूमि—भारतभूमि में मालवीय जी का प्रादुर्भाव उस समय हुआ, जबकि देश पराधीनता की बेड़ियों में आबद्ध था। भारत माता लौह प्राचीर में बन्द सिसकियां भर रही थी। उस समय देश में क्रान्ति के बगूले उठ रहे थे और आन्दोलन की चिनगारियां प्रज्वलित हो रही थीं।

भारत में अंगरेजों का एकच्छत्र राज्य स्थापित हो चुका था। देश की अवस्था दिनों दिन बदतर होती जा रही थी। अंग्रेज तो भारत का माल लूट रहे थे। भारत का धन विदेशों में जा रहा था। भारत के लिए यह असह्य था। स्वतन्त्रता के लिए लोग लड़ रहे थे। उनके जन्म के कुछ ही पूर्व सन् १८५७ की महान क्रान्ति हुई थी। इसमें भारतीयों को सफलता तो नहीं मिल सकी किन्तु अंगरेजों को यह ज्ञात हो गया कि भारतीय भी अपनी स्वतन्त्रता पर मर मिटनेवाले हैं। इस तरह १८५७ ई० की क्रान्ति को बन्दूकों और तोपों के नीचे कुचल दिया गया। फिर भी भारतीयों ने अपनी हिम्मत नहीं हारी थी। अभी भी उनकी धमनियों में उष्ण रक्त खौल रहा था। लोग स्वतन्त्रता का सूर्य देखने के लिए तड़प रहे थे। अपने को गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने के लिए यथाशक्ति चेष्टा कर रहे थे। कुछ ऐसी ही संक्रान्ति काल की बेला थी जबकि मालवीय जी का उदय हुआ।

जीवन-वृत्त—जननी जन्मभूमि के उन्नायकों में महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी का नाम अग्रगणीय एवं भारतीय इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अंकित किए जाने लायक है। इनका जन्म २५ दिसम्बर १८६१ ई० में इलाहाबाद में हुआ। इनके पिता का नाम पं० ब्रजनाथ मालवीय एवं माता का नाम भूना देवी था। मालवा निवासी होने के कारण वे अपने को मालवीय कहा करते थे।

इनका विद्यार्थी-जीवन पूर्ण सफल रहा। ये पढ़ने लिखने में अधिक मेधावी नहीं थे किन्तु छात्रों और शिक्षकों के मध्य सर्वप्रिय अवश्य थे। इनके स्वभाव से सभी आकृष्ट हो जाते थे। खेल-कूद में इनका विनोद मन लगता था और बचपन से ही समाज सेवा की ओर उनका झुकाव था। मल-

कूद में अधिक रहने के कारण एक बार वे एफ० ए० की परीक्षा में असफल रहे। किन्तु उससे न तो वे उदास ही हुए और न उनके जीवन का विकास ही रुका। असफल रहने के बावजूद भी वे खेल-कूद में निरन्तर भाग लेते थे।

सन् १८८४ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय से उन्होंने स्नातक की परीक्षा पास की। आगे पढ़ने के विचार से एम० ए० में नाम लिखाया, किन्तु अध्ययन के क्रम में व्यतिक्रम उपस्थित हो गया। किंचित मास पढ़ने के पश्चात जीवन के कार्यक्षेत्र में उतर आये। इस जीवन की समर भूमि में उन्होंने अधिक कुशलता दिखाई और छात्र-जीवन में विशेष सफलता प्राप्त की। वास्तविक जीवन के कार्यक्षेत्र में प्रवेश करते समय अन्य लोगों की भाँति वे भी साधारण थे। पर जिस समय उनकी यात्रा समाप्त हुई, उस समय वे सर्वसाधारण के बिलकुल ऊपर थे।

अपने जीवन-भर के प्रत्येक क्षण में और अपनी यात्रा के प्रत्येक पद पर वे जनता जनार्दन के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चले। छात्र जीवन की समाप्ति के पश्चात गवर्नमेंट हाई स्कूल में ४०) रु० माहवार वेतन पर उन्होंने अध्यापन-कार्य का सहारा लिया। अपनी सरलता, सच्चरित्रता और योग्यता के कारण शीघ्र ही विद्यार्थियों के मध्य सर्वप्रिय बन गये। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। तदनन्तर आपके समीप कालाकांकर राज्य के राजा रामपाल सिंह की ओर से 'हिन्दुस्तान पत्रिका' का सम्पादन करने का निमंत्रण आया। हिन्दुस्तान आपके सम्पादकत्व में आने से चमक उठा। इसके ग्राहकों की संख्या निरंतर बढ़ती गई। यहाँ पर भी आपने पूरी सफलता हासिल की। अपनी लेखनी के चमत्कार से सबको चकाचौंध कर दिया।

ढाई वर्षों तक 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन करते रहे और इसके बाद इन्होंने वकालत पढ़नी आरम्भ कर दी। वकालत पढ़ते समय भी आप लोक-सेवा और सार्वजनिक कार्यों से मुक्त न रहे। ख्याति प्राप्त पत्रिका इण्डियन ओपिनियन का भी सम्पादन करने लगे। १८९१ ई० में इन्होंने वकालत की परीक्षा पास की और प्रयाग में अपनी प्रैक्टिस प्रारम्भ कर दी। अपनी सच्चाई और सच्चरित्रता, योग्यता और प्रतिभा एवं व्यक्तित्व से मात्र किंचित दिनों में ही आपका नाम प्रख्यात हो गया। वकील की हैसियत से आपने कितनी सफलता प्राप्त की इसका पता चौराचौरी काण्ड से ज्ञात होता है। इस केस में १५१ लोगों को फाँसी की सजा हो गई थी किन्तु मालवीय जी के सतत प्रयास से सभी मुक्त कर दिये गए।

सन १९०२ से १९१२ ई० तक वे संयुक्त प्रान्त के प्रान्तीय व्यवस्थापिका के सदस्य रहे। इसमें उनका कार्य अत्यधिक सराहनीय है, इस पद पर रहकर भी उन्होंने जनता के हित का सदा ख्याल रखा। अपने जीवन काल का अन्तिम समय उन्होंने लोक-सेवा में पूर्ण समर्पित कर दिया और सदा जनता के बन रहे।

मालवीय जी हिंदी हिंदू, हिन्दुस्तान के समर्थक थे। वो हिन्दी की वृद्धि के लिए उन्होंने अनेकानेक प्रयत्न किये। अनेकों को हिंदी में लिखने के लिए सदा प्रोत्साहित करते रहे तथा अनेकों हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति के रूप में उन्होंने हिंदी की जो सेवा की वह सर्वथा स्तुत्य है। हिंदी के प्रति भारतीयों की उदासीनता से उन्हें घोर दुःख होता था। वे सदा ही हिंदू धर्म का पालन करते थे इसका परिचय तो उनकी वेश भूषा को देखकर ही ज्ञात हो जाता है। हिंदू धर्म को पतन की ओर जाते देखना उनके लिए असहनीय था। इसके पुनरुत्थान एवं पुनरोद्धार के लिए उन्होंने हिंदू महासभा की स्थापना की। प्रारम्भ में इस सभा ने हिन्दुओं की बहुत बड़ी सेवा की किन्तु बाद में इसका रूप कुछ विकृत हो गया। हिंदू धर्म के अवगुणों से वे अवगत थे और उन अवगुणों का वे सदा निरादर करते थे। अछूतों के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी। वे न केवल हिन्दी या हिन्दू का ही उद्धार उत्थान चाहते थे, वरन् कुल मिलाकर उनका लक्ष्य भारत का उत्थान करना था। वे चाहते थे कि भारतीय विद्यार्थी को हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू आदर्शों के अनुसार शिक्षा मिले और इसी ध्येय को लेकर उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। वर्षों वर्षों के घोर और अनवरत परिश्रम के पश्चात् करोड़ों रुपया एकत्र करके उन्होंने इस विश्वविद्यालय में लगाया। चार फरवरी १९१६ को भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग ने इसका शिलान्यास किया। उस दिन मालवीय जी की सम्पूर्ण जीवन की लालसा पूर्ण हुई जिसका वे सपना देख रहे थे। इस दिन भारत की एक बहुत बड़ी क्षति पूर्ति हुई। यह विश्वविद्यालय उनके पुनीत आदर्शों उनकी बहुमुखी प्रतिभा उज्ज्वल व्यक्तित्व और उनके भारतीय विचारधारा का जीता जागता स्मारक है। इसकी प्रत्येक ईंट उनकी महानता और त्याग का बखान करती है। यह मालवीय जी की आशावादिता और अथक परिश्रम का ज्वलन्त प्रतीक है। इसी को देखने से प्रतीत होता है कि वास्तव में मालवीय जी साधारण होते हुए भी महान थे। राजा होते हुए भी रंक थे और लौकिक होते हुए भी विरक्त थे।

मालवीय जी ने भारत की राजनीतिक प्रगति में भी हाथ बँटाया। कांग्रेस की उन्होंने बहुत बड़ी सेवा की। इसके दो बार सभापति भी चुने गए। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड की घटना की कटु आलोचना की और उसका सच्चा रूप जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। १९३१ ई० में राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए वे इंगलैण्ड भी गए और वहाँ पर सभी तरह से महात्मा गांधी का सहयोग प्रदान किया। १९४० ई० में क्रिप्स मिशन की बुराइयों को प्रदर्शित कर उन्होंने अपनी योग्यता एवं देशभक्ति का महान् परिचय दिया। भारत विभाजन के आप सदा विरुद्ध रहे। स्कूलों एवं कालेजों में सैनिक शिक्षा लागू करने तथा छोटी छोटी बालचर स्काउट-संस्थाओं की स्थापना के लिए सदा प्रोत्साहन देते रहे। इनका अटल विश्वास था कि गुलामी की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए न केवल मानसिक विकास की ही आवश्यकता है, वरन् शारीरिक विकास की भी आवश्यकता है। विद्यार्थियों को वे सदा कहा करते थे कि—

दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम ॥
मन लगाई विद्या पढ़ो, पूर्ण होंय सब काम ॥

उनका चरित्र सदा अनुकरणीय रहा है। कर्त्तव्यपरायणता दानशीलता परोपकार सत्यनिष्ठा निर्भीकता समाज सेवा और लोक-सेवा तथा धर्म प्रेम के मामलों में वे साक्षात अवतार ही थे। ऐसा बड़ा महान व्यक्ति १२ नवम्बर १९४६ को इस लोक से उठ गया। उनकी मृत्यु से भारत को बहुत बड़ा सदमा पहुँचा और कदाचित इस निकट भविष्य में महान क्षति की पूर्ति नहीं हो सकेगी। आज हिन्दू विश्वविद्यालय में जाइए तो उनके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो जाना है। धन्य हैं मालवीय जी।

शिक्षाएँ—सदा सत्य बोलना चाहिए। निर्भीक साहसी और निडर होना चाहिए। खूब ध्यान लगाकर अध्ययन करना चाहिए। भगवान की प्रतिदिन पूजा करनी चाहिए। शारीरिक विकास की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। समाज-सेवा का कोई न कोई कार्य अवश्य करना चाहिए। कोई भी कार्य जनता की भलाई के लिए करनी चाहिए जिसमें मानव समाज का निज भाषा एवं निज देश के उत्थान की ओर सतत् प्रयत्नशील रहना चाहिए। साथ ही साथ अपने धर्म का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए। प्रत्येक धर्म के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए। सेवा और सहायता से कभी मुख नहीं मोड़ना चाहिए। विनयी बनना चाहिए तथा सबके साथ नम्रता का बर्ताव करना चाहिए। कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे दूसरे को सदमा पहुँचे।

प्रश्न

१ मालवाय जी के जन्म के पूर्व देश की क्या अवस्था थी ?
सन् १८५७ का क्रान्ति के बारे म क्या जानते है ?
३ मालवाय जी का जीवन वृत्तान्त सक्षिप्त में प्रस्तुत करें ।
४ मालवाय जी ने भारतीयों के लिए कौन-कौन सा कार्य किया ?
५ भारत के लिए उनका सबसे बड़ा कौन सा कार्य है ?
६ हिन्दू धर्म के उत्थान के लिए कौन सा कार्य किया ?
७ क्या इस क्षेत्र म उनको सफलता मिली ?
८ हिन्दी का कौन सा सेवा की ?
९ उनके जीवन का क्या सिद्धान्त था ?
१० उनके जीवन से आपको क्या शिक्षाए मिलती है ?



१४ नवम्बर—नेहरू जयन्ती

पूर्व तयारी —जयन्ती की सूचना दो दिन पूर्व ही छात्रों एवं शिक्षकों को दे दी जायगी। लोग निबंध कविता, प्रहसन इत्यादि तयार करेंगे। आज सूत्र यज्ञ विशेष रूप से दो घंटे तक होगा। सूत्र-यज्ञ के उपरान्त सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन होगा। इसमें लोग निबंध पढ़ेंगे भाषण देंगे, कविता पाठ करेंगे और प्रहसन प्रस्तुत करेंगे। अन्ततोगत्वा प्रधान जी अपना विचार प्रगट करेंगे। सभा विघटित होने के उपरान्त सभी निबंधों भाषणों, कवि-ताओं और प्रहसनों का संकलन कर पुस्तक का रूप देकर पुस्तक कक्ष में सुर-क्षित रख देंगे। इसके अतिरिक्त १४ नवम्बर को बच्चों का दिन माना जाता है। इसलिये छोटे छोटे बच्चों को उस दिन स्नान कराकर उनके वस्त्रादि स्वच्छ कर उनका जुलूस निकालना चाहिये और श्री नेहरू के बारे में उनके कोमल मस्तिष्क में ज्ञानप्रद भावनायें भरनी चाहिये। उत्सव के उपरान्त बच्चों में मिष्टान्न वितरण भी करना चाहिये।

देश की राजनैतिक हालत —देश में अंग्रेजों का एकच्छत्र राज्य आसेतु हिमालय कायम था। सारे भारत पर उनका दबदबा था। भारतीय जनता गोरी सरकार की नीति से तंग आ चुकी थी। वह उसे उखाड़ फेंकने की चेष्टा में थी। किन्तु तोपों और बन्दूकों के आगे एक न चली। देश में बड़े-बड़े महामान्य नेता राजनीति क्षेत्र में अति तीव्रता से काम कर रहे थे। इनमें दो दल थे एक नरम दल दूसरा गरम दल। गरम दल में लाल बाल पाल थे और नरम दल में वकील बरिस्टर इत्यादि। इन्हीं दल के नेताओं में से एक मोती लाल नेहरू भी थे।

जीवन वृत्त —जवाहर लाल देश के महामान्य नेता थे। इनके साथ होनहार बिरवान के होत चिकने पात वाली कहावत चरितार्थ होती है। मोती का पुत्र जवाहर हुआ। सचमुच यदि मोती मोती था तो आज जवाहर भी जवाहर से कम नहीं। कितना मनमोहक सुरुचिपूर्ण नाम था जवाहर। जैसा नाम वैसा गुण जैसा गुण वैसा ही नाम। कदाचित् इस तरह का मणिकंचन सा योग विरले हो, कहीं देखने को मिलता है। अंग्रेजी में एक कहा-वत है 'Boon with a silver spoon in ones mouth' सचमुच में

उनका जन्म राजसी ठाट बाट में १४ नवम्बर १८८९ ई० में इलाहाबाद में आनन्द भवन में हुआ। इनका बचपन सुख की गोद में व्यतीत हुआ। उन्हें कभी किसी वस्तु का अभाव नहीं खटका। ये ग्यारह वर्षों तक माँ-बाप के प्यार में एक मात्र उत्तराधिकारी रहे। पिता के प्यार ने इनके स्वभाव का नव निर्माण किया तो माँ का स्नेह ने इनके कलेवर की श्री वृद्धि की। और इसी के बीच उन्होंने अपने सुन्दर सुव्यवस्थित और सुगठित सामाजिक जीवन का निर्माण किया। जवाहर अपने घर का चाँद था जिसकी शुभ्रज्योत्स्ना में सभी सुख और संतोष की साँस लेते थे।

यदि भारत को उनके जन्म देने का गौरव है तो इंगलैण्ड को गौरव है उनका सम्यक् विकास करने का। १९०५ ई० में वे सर्वप्रथम इंगलैण्ड गये। वहाँ के प्रसिद्ध प्राचीन स्कूल हैरो में एण्ट्रेन्स तक की शिक्षा प्राप्त की तदुपरान्त केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कॉलेज में उन्होंने १९१० में बी० ए० की डिग्री प्राप्त की और १९१२ ई० में इनर टेम्पुल से बेरिस्टरी परीक्षा उत्तीर्ण हो वे स्वदेश लौट आये।

स्वदेश लौटते ही सन १९१२ में ये पटना के कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। १९१४ में प्रवासी भारतीयों के लिये ५० हजार रुपये संग्रह कर अफ्रिका भेजे थे। सन १९१६ में लखनऊ-कांग्रेस के समय महात्मा गांधी से भेंट होने पर ये उनके व्यक्तित्व को देख कर अत्यन्त प्रभावित हुये। उन्होंने फौरन फैशन का चोगा इंगलिस्तान फेंक तपस्वी का बाना धारण कर लिया। सेवा और सादगी का जीवन-यापन करते हुये महलों का त्याग भारत की टूटी फूटी झोपड़ियों की ओर अविराम गति से चल पड़े थे।

सन १९१९ ई० में इन्होंने अवध में किसानों में काम किया और इसमें उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। १९२१ ई० के असहयोग आन्दोलन में स्थान छः महीने की जेल की सजा हुई किन्तु कुछ ही दिनों में छोड़ दिये गये। १९२२ में ये विदेशी कपड़ों की दुकानों पर पिकेटिंग करते हुये पुनः बन्द किये गये। इसी समय इनकी पत्नी कमला नेहरू बीमार पड़ी और इनको इलाज कराने के लिये स्वीटजरलैंड गये। किन्तु वहाँ पर उनका स्वास्थ्य न सुधरा। १९२६ से १९२९ ई० तक ये निरन्तर अखिल भारतीय कांग्रेस के मन्त्री रहे। १९२८ ई० में कलकत्ता अधिवेशन में इन्होंने पूर्ण स्वराज्य की माँग की। सन १९२९ के कांग्रेस-महाअधिवेशन के ये अध्यक्ष निर्वाचित हुए और उन्हीं की अध्यक्षता में रावी तट पर एक बहुत बड़ा अधिवेशन हुआ और इसमें उन्होंने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास किया। १९३०

म समय कानून भग करने मे उन्होने सक्रिय हाथ बटाया जिसमे नेहरू परि-वार के सभी सदस्यो को जेल की हवा खानी पड़ी।

१९३२ ई० के आगमन के साथ ही भारतीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भी अति तीव्रता आ गई। इसमे जवाहर लाल ने बापू के पद चिन्हों का अनुसरण कर स्वतन्त्रता देवी का आह्वान किया। इससे १९४० में इन्हें चार वर्षों की जेल की सजा हुई।

पुन स्वतन्त्रता सत्याग्रह का तूफानी झंझा लिए सन् '४२ का साल आया। इस ऐतिहासिक क्रान्ति से ब्रिटिश शासन की जड़ हिल गई।

अन्ततोगत्वा येन केन प्रकारेण भारत का सौभाग्य-सूर्य चमक उठा और सदियों के बाद १५ अगस्त '४७ को दासता की बेड़ियां टूट गईं और भारत स्वातन्त्र्य सुप्रभात के स्वर्णिम सौंदर्य की आभा में मुखरित और पुलकित हो उठा और जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व और मन्त्रित्व में भारत में स्वतन्त्र स्वतन्त्र सार्वभौम प्रजातन्त्र की स्थापना हुई।

जवाहर लाल जी जनता जनार्दन के पुजारी थे। जनता उन्हें परम पूज्य मानती थी। उनके त्याग की महिमा पर काव्य लिखा जाय तो वह महाकाव्य बन जा सकता है। उन्होंने सेवा और सादगी का जीवन अपनाया। अनेकों बार जेल की सिकचे उनके तेज को परख चुकी थी। जेलों में रहकर उनको असह्य यातनाओं का सहन किया किन्तु जीवन में उन्होंने हार कबूल नहीं की। वे अध्ययनशील रहे। जेल की चहारदीवारियों के अन्दर भी उनका अध्ययन जारी रहा। इतिहास से उन्हें विशेष प्रेम था। वे एक एक क्षण का प्रतिष्ठा करते थे। उन्हें शीर्षासन से विशेष रुचि थी।

एक लेखक के शब्दों में 'जवाहर लाल का व्यक्तित्व उत्साह कर्मण्यता और अनुशासन का प्रतिरूप है। उनकी दृष्टि में निर्मल आदर्श की ज्योति है। उनके चरण चिन्हों में सुसंस्कृति और आत्म गौरव की लोच है। उनके हृदय में चार असन्तोष है, हमारी सामाजिक विश्रृंखलता के प्रति उनके दिल में दर्द है, रोगी और भूखों के प्रति उनके मन में असीम सहानुभूति है। समानता और लोक-कल्याण की भावना, सात्विक क्रोध, निष्ठुर कार्यशीलता, शुद्ध आदर्शवाद तथा निर्णय की शक्ति और बड़ी प्यारी झुंझलाहट जवाहर लाल नेहरू की विशेषताएं हैं।

जहाँ उनमें वीर योद्धा की उग्रता स्फूर्ति तथा अधीरता थी, वहाँ राज-नीतिज्ञ का विवेक भी था। वे परिस्थिति से आगे की बात सोचते थे। वह स्फटिक मणि की भांति पवित्र थे उनकी सच्चरित्रता सदेह से परे थी। जोखिम

में इन्हें अति आनन्द मिलता था। इनका हृदय कोमल था। इसमें प्रेम, दया और इन्सानियत भरी पड़ी थी।

इनके बारे में "The Hindustan Standard" ने लिखा है—
"He is aristocratically democratic, subjectively objective, internationally national, institutionally singular, individually of the master and massively above the classes He is most pleasing in the Superlative Contradiction irretable by nature, kind at heart, impulsive in emotion, calm in thinking arrogant in opposition, milel in compromise restless in mood, gentle in manners ready to speak impatient to listen

Politician, historian and scientist, Nehru is deplomat and pacifest, In him is happily blended All that is to be commonded"

नेहरू जी हमारे भारत के प्रधान मंत्री थे। केवल भारत ही नहीं अपितु एशिया और विश्व के नेताओं में भी अग्रगण्य थे। इनकी वैदेशिक नीति में गांधीवाद परिलक्षित होता था। विश्व इस समय दो दलों में विभाजित है। एक अमरीका दूसरा रूस। भारत इन दोनों दलों के मध्य में तटस्थ नीति सनातन पताका लिए अहिंसा का अमोघ अस्त्र लिए नेहरू के सफल नेतृत्व में शान्ति पथ की ओर अग्रसर हो रहा था। सचमुच में नेहरू राष्ट्र के कर्णधार थे।

ईश्वर ने इस विश्व विभूति शान्ति के एकमात्र अग्रदूत जवाहरलाल को २७ मई १९६४ को २ बजे दिन में अपने यहाँ बुला लिया। उस दिन सारा भारत शोक-सागर में डूब गया। विश्व विकल हो उठा। उस महापुरुष ने जहाँ अन्तिम विश्राम लिया उसे शान्ति घाट कहते हैं। वह आज हर भारत वासी का तीर्थ-स्थल बन गया है।

Oh ! be thou blest with all that
Heaven can send
Long health, long youth long pleasure,
and a friend

शिक्षायें — देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने के लिये सदैव तत्पर रहना चाहिए। प्रत्येक काम में आगे रहना चाहिए। दीन दुखियों की सेवा करनी चाहिए। सादगी से जीवन यापन करना चाहिए। जनता की माँग को स्वीकार करना चाहिए। स्पष्टवादी और निर्भीक होना चाहिए। कष्टों और विघ्न-बाधाओं को देखकर घबड़ाना नहीं चाहिए। धैर्य धारण करना चाहिए। अनुशासन प्रिय होना चाहिए। लोक कल्याण करना चाहिए। सबके प्रति समानता का भाव प्रदर्शित करना चाहिए। निष्पक्ष और न्याय शील होना चाहिए। सभी के साथ प्रेम, दया और इन्सानियत का भाव प्रदर्शित करना चाहिए।

प्रश्न

१ नेहरू के जन्म के पूर्व देश की अवस्था कैसी थी?
२ नेहरू ने राजनीतिक क्षेत्र में कब से पदार्पण किया?
३ राजनीतिक क्षेत्र में उन्होंने कौन-कौन-सा महत्वपूर्ण कार्य किया?
४ इनका जीवन वृत्त संक्षेप में प्रस्तुत करें।
५ इनका नाम आज विश्व में क्यों ऊँचा है?
६ इनके व्यक्तित्व के बारे में क्या जानते हैं?
७ भारत को इनकी कौन-सी देन है?
८ विश्व के हितार्थ इन्होंने कौन सा कार्य किया?
९ विश्व के अन्य प्रमुख नेताओं के साथ इनकी तुलना करें और इन सबों में इनका स्थान निर्धारित करें?
१० भारत और रूस की मैत्री में नेहरू का क्या हाथ रहा है?
११ महात्मा गाँधी के राजनीतिक उत्तराधिकारी नेहरू थे। इसे सिद्ध करें।
१२ पंचशील से क्या समझते हैं?
१३ नेहरू की वैदेशिक नीति पर प्रकाश डालें।

३ दिसम्बर—राजेन्द्र प्रसाद जयन्ती

पूर्व तयारी —दो दिन पूर्व विद्यालय में राजेन्द्र-जयन्ती की सूचना प्रसारित कर दी जायगी। जयन्ती के दिन विशेष रूप से सफाई और सूत्र-यज्ञ करेंगे। सूत्र-यज्ञ में रामायण का पाठ होगा। सूत्र-यज्ञोपरान्त कांग्रेस के संक्षिप्त इतिहास और भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन में बिहार का कहाँ तक हाथ रहा है इसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जायगा।

स्वतन्त्रता का इतिहास भी स्पष्ट कर दिया जायगा और यह वर्तमान की चेष्टा की जायगी कि स्वतन्त्रता की ज्वाला प्रज्वलित करने में राजेन्द्र बाबू का कहाँ तक और कितना सहयोग रहा है। तदुपरान्त इनके बाद शकुल जीवन पर भी दृष्टिपात करते हुए यह स्पष्ट किया जायगा कि इनके जीवन में कौन-कौन-सी महत्त्वपूर्ण घटनायें घटित हुईं। अन्य राष्ट्रीय नेताओं के साथ राजेन्द्र प्रसाद की तुलनात्मक विवेचना भी की जायगी और साथ ही राजेन्द्र की महानता पर भी प्रकाश डाला जायगा। इस प्रकार अनेक चर्चाओं के उपरान्त सभी लेखों एवं भाषणों का संकलन कर पुस्तक का रूप देंगे और उसपर जिल्द बँधवाकर सुरक्षित रख देंगे।

जन्म स्थान का भौगोलिक परिचय —राजेन्द्र बाबू का जन्म छपरा जिले में हुआ था। छपरा जिले में मौनसून से वर्षा होती है। जलवायु उष्ण है और यहाँ धान तथा रब्बी की फसल अच्छी होती है। गर्मी विशेष पड़ती है।

पृष्ठभूमि —जननी जन्मभूमि के उन्नायकों में देशरत्न डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद का नाम अग्रगण्य एवं भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित किए जाने योग्य है। इन्होंने विश्ववंद्य बापू के चरण चिह्नों का अनुसरण किया एवं भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम में प्रमुख एवं सक्रिय हाथ बटाया। भारतभूमि में राजेन्द्र बाबू का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब देश पराधीनता की बेड़ियों में आबद्ध था। उस समय देश में आजादी के बगूले उठ रहे थे और आन्दोलन की चिनगारियाँ प्रज्वलित हो रही थीं। लोग स्वतन्त्रता का सूर्य देखने के लिए तड़प रहे थे, अपने को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करने के लिए चेष्टा कर रहे थे। ऐसी ही संक्रान्ति काल की कुक्षि बेला थी जब राजेन्द्र प्रसाद का बिहार के गगनांगन में अभ्युदय हुआ।

जीवन वृत्त —बिहार की विभूति राजेन्द्र बाबू का जन्म ३ दिसम्बर, १८८४ ई० म बिहार प्रात म छपरा जिलान्तगत जीरादेई ग्राम के एक सु-सम्पन्न एव सुसस्कृत परिवार मे हुआ था। उस समय उर्दू और फारसी का बोलबाला था, अत इन्हें भी बचपन से ही उर्दू और फारसी की शिक्षा दी गई। तत्पश्चात इन्होंने छपरा जिला स्कूल, टी के घोष एकेडमी एव पटना विद्यालय म शिक्षा पाने के बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय स सन १९०० मे प्रवेशिका परीक्षा सर्वोच्च अक उपलब्ध कर उत्तीर्ण हुए। इन्होंने आसाम, बगाल, बिहार एव उडीसा के समस्त विद्यालयो के रेकर्ड तोड दिया। १९०६ ई० म एम० ए० और बाद म एम० एल० की परीक्षाओ म भी उत्तीर्ण हुए।

प्रवेशिका परीक्षा और विश्वविद्यालय म सर्वप्रथम आने पर 'हिन्दुस्तान रिव्यू' के सम्पादक ने राजेन्द्र बाबू के प्रति निम्नाकित विचार व्यक्त किया था— नवयुवक राजेन्द्र सब प्रकार से प्रतिभाशाली विद्यार्थी है। हम आशा है कि प्रवेशिका परीक्षा म जो स्थान उन्होंने प्राप्त किया है उसे वे जीवन भर निभायग। ईश्वर जाने इस नवयुवक क भविष्य म क्या है। लेकिन यदि इसका स्वास्थ्य ठीक रहा तो कोई भी पद जो हिन्दुस्तानियो के लिए खुला है, इसकी महत्वाकाक्षा क बाहर नही। हम आशा है, आग चलकर यह नव-युवक अपने प्रान्त के हाइकोर्ट का न्यायाधीश और कांग्रेस का सभापति होगा।' सम्पादक की इस भविष्यवाणी से युवक राजेन्द्र को आग बढने की प्रेरणा प्राप्त हुई। अपने विद्यार्थीकाल म व सदव सवप्रथम आये। कांग्रेस का सभापति भी नियुक्त हुआ और उन्होंने भारत का प्रथम राष्ट्रपति होकर सारे नभ के शासन की बागडोर पकडकर इसका सचालन किया।

सदव दम्मे की बीमारी से पीडित रहने पर भी राजेन्द्र बाबू ने जो कुछ किया वह आज हमलोगो के समक्ष ही है। १९०६ ई० मे ये कांग्रेस म शामिल हुए और अबतक य कांग्रेस के एक कमठ सदस्य रहे है। य बग भग आन्दोलन से अत्यधिक प्रभावित हुए। इनके मन म राष्ट्रीय भावना का स्रोत सचारित हुआ। ये राष्ट्रीय आदोलन की धधकती ज्वाला मे कूद पडे। राजेन्द्र बाबू ने देशोत्थान के कार्यो म खूब खुलकर हाथ बटाया। १९१० ई० से ही य साधना के पथ के पथिक बन। अपनी खूब चलती वकालत को ठोकर मार कर इन्होंने गांधी जी के साथ स्वतन्त्रता सग्राम म सक्रिय भाग लिया। १९१९ ई० के रौलेट ऐक्ट के आदोलन म गांधी जी का पूरा पूरा साथ दिया। १९२२ ई० म गया कांग्रेस अधिवेशन मे आपने सक्रिय हाथ बटाया। बिहार मे खादी का प्रचार करने और विद्यापीठ जसी शिक्षण

संस्थाओं के असहयोग के समय भी संचालित रखने का श्रेय आप ही को है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में चम्पारण में जो आंदोलन चलाया गया उसमें भी आपका पूर्ण सहयोग रहा। सन १९२०, १९३० एवं १०४० और १९४२ के सत्याग्रह संग्रामों में इन्होंने खुलकर भाग लिया। १९३० ई० के सत्याग्रह को बिहार में जो सफलता मिली उसके धन्यवाद के पात्र आप ही हैं। कई अवसरों पर जेल की हवा भी खाई। अनेकों बार पुलिसों की लाठियों का प्रहार भी सहन करना पड़ा। बिहार की कांग्रेस का पूर्ण संगठन कर इसमें राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना लाई।

अछूतोद्धार आंदोलन में भी आप कभी भी पीछे न रहे। जब कभी देश में बाढ़ आई, अकाल या भूकम्प का प्रकोप हुआ, आप अपनी सेवा दान करने के लिए सदा तत्पर रहे। सर्वदा राजनीति के जाल में फँसे रहने पर भी आपने हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा के उत्थान के लिए जो कुछ भी किया, उसका मूल्य कम नहीं। यशस्वी आपने कई पत्रों का सफलतापूर्वक सम्पादन किया। आप ही के परिश्रम के फलस्वरूप पटना विश्वविद्यालय ने हिन्दी भाषा को सर्वप्रथम शिक्षा का माध्यम बनाया। राष्ट्र-सेवा के साथ ही इन्होंने ज्ञान दान भी किया। मुजफ्फरपुर कालेज एवं कलकत्ता के सिटी कालेज में प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। कलकत्ता के लॉ कालेज में भी अध्यापन कार्य किया।

राजेन्द्र बाबू के परिवार वालों को पूरा विश्वास था कि ये बहुत अधिक सम्पत्ति उपार्जन करेंगे। उनका यह विश्वास अक्षरशः फलीभूत हुआ। इन्होंने इतनी सम्पत्ति अर्जित की कि वे यदि दोनों हाथों से भी उलीचें जाय तो यह कम होने की नहीं। इन्होंने वह धन कमाया कि जिसे कोई चतुर चोर भी चुराने में सफल नहीं हो सकता। यह सम्पत्ति समय की आँच लगने पर भी खराब नहीं हो सकती।

राजेन्द्र बाबू सचमुच में देश के रत्न थे। वे किसी खास के नहीं वरन समस्त देश के थे। वे जो कुछ करते थे अपने देश के लिए। उनके हृदय में सबके लिए एक स्थान था। सदा निःस्वार्थ रूप से सेवा कार्य में निरत रहते थे। सेवा ही उनका जीवन था। यही था उनके जीवन का एकमात्र ध्येय। न तो बड़प्पन की शान शौकत थी और न नेतृत्व का नशा। परोपकार, दया, क्षमा, सहानुभूति आदि गुणों से विभूषित एवं उच्चतादि से विचार रख एवं नवनीतसे साधक थे। सदा पूर्ण निःस्पृह होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम'

की भावना को अंगीकृत करते थे। इनका स्वभाव अत्यन्त साधु एवं विचार-धारा अमल विमल था। बिहार के गाँधी और अजातशत्रु के आधुनिक रूप, सत्यानुरागी और अहिंसा के पुजारी तथा सादगी और सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति राजेन्द्र बाबू वस्तुतः देश के गौरव और बिहार के विभूति थे। सादगी और उच्च विचारों का ऐसा व्यक्ति बिरले ही मिलते हैं। बिहार ने जिस क्षण जिस लग्न में जिस मुहूर्त में राजेन्द्र को जन्म दिया, उसी दिन, उसी क्षण और उसी मुहूर्त में अनेकानेक बालकों को जन्म दिया होगा, पर किसी को राजेन्द्र बाबू जैसा दिल और दिमाग, हृदय और मस्तिष्क नहीं मिला। दिमाग में ऐसी अजेय शक्ति थी जो देश का इतिहास ही बदल दे। हृदय में वह महानता थी जो कट्टर शत्रु को भी हृदयालिंगन कर दे। सभी जीवों के प्रति इनके हृदय में प्रेमाभाव था। ये सुधि लेखक भी थे। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उन्नायक के रूप में अनेकों पुस्तकों का प्रणयन भी किया। विरचित 'आत्म कथा' का अनुवाद कई भाषाओं में हो चुका है।

राजेन्द्र बाबू कोई व्यक्ति नहीं वरन् एक शक्ति थे। इसी शक्ति ने हमारे हृदय में जागृति का प्रभाव संचारित किया। यह शक्ति अजेय थी। और अमर थी। किसी समय ह्यूम साहब ने कहा था जिस देश में राजेन्द्र बाबू जैसा व्यक्ति है वह कभी भी परतन्त्र नहीं रह सकता। ठीक ही है आज देश परतन्त्र नहीं। उन्होंने राष्ट्रपति के पद पर अधिष्ठित होकर पूर्ण क्षमता के साथ कुशलपूर्वक अपने कार्य का सम्यक्-संचालन किया। जिस देश का राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू जैसा व्यक्ति था वह कदापि कठिनाईयों के सामने सिर नहीं नत कर सकता। ये हमारे देश के जाग्रत आदर्श थे। आज हम नाज है ऐसे देशरत्न पर। देश को आवश्यकता है ऐसे ही उन्नायकों की। अपने गुण-गरिमा के कारण ये चिरस्मरणीय बने रहेंगे। अन्त में कवि कलक्टर सिंह 'केशरी' के शब्दों में—

दीपित दिनेन्द्र-सा भारतीय नभ में राजेन्द्र हमारा है।

वह कोटि-कोटि दीनों प्रश्रयहीनों का एक सहारा है।

निष्कर्ष —देशभक्त बनना चाहिए। समय पड़ने पर देश के लिए बलिदान होने में कभी भी हिचकना नहीं चाहिए। त्यागी और उदार बनना चाहिए। गरीबों की सदैव सेवा करनी चाहिए। किसी भी व्यक्ति का सम्मान करना चाहिए। अपना पराया का भेद भाव नहीं करना चाहिए। सबों को समान दृष्टि से देखना चाहिए। सेवा और सहायता से कभी मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। गरीब व्यक्तियों का भी सत्कार करना चाहिए।

प्रश्न

१ डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के समय देश की राजनीतिक अवस्था कैसी थी ?

२ इनका जीवन-वृत्त संक्षिप्त में प्रस्तुत करें ।

३ राजनीतिक क्षेत्र में इनका कब पदार्पण हुआ ? इन्होंने कौन सा प्रमुख काम किया ?

४ इन्हें देशरत्न क्यों कहा जाता था ?

५ इन्होंने किस पार्टी की स्थापना की थी ? इनके जीवन से आपको कौन सी शिक्षायें मिलती हैं ?



२५ दिसम्बर—ईसा मसीह जयन्ती

पृष्ठ-भूमि —जब रोम साम्राज्य का उत्कर्ष अपनी चरमसीमा पर था, उस समय रोम के राज्य सिंहासन पर सम्राट आगस्टस आसीन था। जुलियस सीजर की मृत्यु के बाद देश में गृह-युद्ध के कारण अशान्ति फैली हुई थी। इस अशान्ति को दूर करने और राज्य में शान्ति स्थापित एवं लोगों में विश्व-बन्धुत्व की भावना को जाग्रत करने के हेतु उसने सम्राट की पूजा करनी प्रारम्भ करवाई। आगस्टस का व्यक्तित्व बहुत महान था। इससे भी लोग प्रभावित हुए और उसकी पूजा धूम धाम से मनाने लगे। किन्तु साम्राज्य की सुदृढ़ राज सत्ता को कमजोर राज्य सम्भालने लगे तो सम्राट पूजा का महत्व कम होने लगा। साम्राज्य में नगरों की प्रधानता थी। इन नगरों में विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय के लोग एक स्थान पर इकट्ठे होते थे। इसके कारण भी उनमें विश्व-बन्धुत्व की भावना का उदय होने लगा। लेकिन इस विश्व-बन्धुत्व की भावना पैदा होने के उपरान्त भी वे लोग किसी एक धर्म को मानने के लिए तैयार नहीं थे। ईसा के जन्म के पूर्व प्राय २०० वर्षों तक साम्राज्यवादी युद्धों, गृह युद्धों एवं वर्ग-संघर्ष के कारण जनता का दुःख दिन पर दिन बढ़ता ही चला जा रहा था। उनका वर्तमान जीवन तीव्र संघर्षों से आबद्ध और भविष्य निराशाजनक था। विजित देशों से सहस्त्र की संख्या में लोग गुलाम बनाकर लाए जा रहे थे। इन गुलामों के अपने प्राचीन धार्मिक विश्वास प्राय कमजोर पड़ गए थे। अतः वे कोई ऐसे धर्म की खोज में चिन्तित थे जो उन्हें कष्टों से मुक्ति के लिए उन्होंने अनेकों बार क्रान्ति भी की। फिर भी उन्हें शोषण से छुटकारा न मिल सका। अब उन्हें इस संसार से कोई आशा न थी। बस मात्र वे परलोक की ओर टकटकी लगाए हुए थे जहाँ उन्हें शान्ति मिलती। ऐसी ही अशान्ति काल की वेला में ईसाई धर्म का उदय हुआ।

ईसा का जीवन वृत्त —

आज विश्व के इतिहास में ईसा का विशिष्ट स्थान है। ईसा को यहूदी लोग जादूगर और रोमन उन्हें उससे बढ़ कर पुकारते हैं। ईसा का जन्म सिरिया के गलिली प्रान्त के नजेरथ नामक स्थान में प्राय ई० पूर्व ४ में

हुआ था। उनकी माता का नाम मरीयम और पिता का नाम युसुफ था। ईसा जाति के यहूदी वर्ग थे और रोमन उनकी रोजी रोटी चलाती थी। जब ईसा की अवस्था १० साल की थी तो वहाँ के गरीब नागरिकों ने रोम के विरुद्ध बगावत किया। इस विद्रोह का बहुत ही गहरा प्रभाव ईसा के हृदय पर पड़ा। यद्यपि ईसा ज्ञान से अनभिज्ञ थे एवं इस युग के धर्म और दर्शन से अपरिचित थे। फिर भी अपने गरीब, असहाय एवं अशिक्षित भाइयों के कष्टों को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। इन्होंने सेंट जान से शिक्षा पाई थी। सेंट जान ने यहूदियों का यह विश्वास दिलाया था कि उनके दुःखों और कष्टों से परित्राण के लिए एक मसीहा पैदा होगा। इससे जान की लोकप्रियता बढ़ती गई। साथ ही उसे रोमन अधिकारी शंका की दृष्टि से देखने लगे। ईसा मसीह के प्रभाव में आने से रोमन अधिकारियों ने सेंट जान को फांसी दे दी। इस घटना से ईसा को अपने शिक्षा के कार्य को जारी रखने की प्रेरणा मिली। अब वह पहाड़ी प्रदेशों में पर्यटन करके मल्लाहों, विदेशियों और गरीबों के बीच अपने उपदेशों का प्रचार करने लगा। उसके व्यक्तित्व एवं तर्क शक्ति से प्रभावित होकर बहुत-से उसके शागिर्द हो गये। उन्होंने ईसा को मसीहा स्वीकार कर लिया। यहूदियों को अब भी ऐसा विश्वास था कि संसार का दुःख दूर करने के लिए एक दिन मसीहा अवश्य ही पैदा होगा। इन यहूदियों को अपने पक्ष में लाने के विचार से उनके प्रसिद्ध तीर्थस्थान जेरुसलम गया। यहाँ के मंदिर के पुराणी पुरोहितों ने ईसा को मसीहा मानने से अस्वीकार कर दिया और वह काँटा उनकी आँखों में खटकने लगा। जेरुसलम में रोमन शासक था जिसका नाम पाइलेटस था। इसके यहाँ लोगों ने ईसा के विरुद्ध बार-बार शिकायत की और उसे राजद्रोही सिद्ध करने की चेष्टा की। किन्तु पाइलेटस एक दिवान व्यक्ति था। उसने ईसा के गुस्से पर ध्यान नहीं दिया। बाद में ईसा को कैद करके लाया गया तो पाइलेटस ने उससे बातचीत की। ईसा की शुद्ध प्रवृत्ति एवं उनके प्रेम भरे आचरण से वह उच्चाधिकारी प्रभावित हुआ और ईसा के विरुद्ध कोई भी कारवाई करने से अस्वीकार किया। अब पुरोहितों ने वहाँ पर अपना दल ले जाकर रोमन सम्राट के समीप शिकायत भेजने लगे। अन्ततोगत्वा मजबूर होकर पाइलेटस को ईसा के विरुद्ध कार्य करना पड़ा। ईसा के ऊपर राजद्रोह का इलजाम लगाया गया और उसे फांसी की सजा दे दी गई। मुसीबत के क्षण में उसके शिष्यों ने साथ छोड़ दिया। इन शिष्यों ने तो यहाँ तक कह डाला कि वे ईसा को जानते तक भी नहीं। उनके इस विश्वासघात

से ईसा को मर्मान्तक चोट लगी। मरते समय ईसा ने चिल्ला कर कहा" मेरे ईश्वर मेरे ईश्वर, तूने मुझे क्यों साथ छोड़ दिया है ?" साथ ही उसने उन शिष्यों के प्रति प्रार्थना की– या खुदा, तू इन्हें माफ कर क्योंकि ये अज्ञानी हैं।'

ईसा के उपदेश —३१ वर्ष का युवा ईसा क्रॉस पर चढ गया और अपने गरीब भाइयों के लिए उसने अपनी शहादत दे दी। इस प्रकार गुलामों और कंगालों का मसीहा इस पृथ्वी पर से सदा के लिए उठ गया। ईसा मार दिया गया किन्तु उसके उपदेश अमर हो गए। उसने संतप्त संसार दुःखी और असहाय जनता के लिए नवीन आशा और जीवन का संदेश दिया। उसने बतलाया कि भले ही इस संसार में क्रूरता और असमानता है पर ईश्वर के संसार में ऐसे नहीं है। उसके उपदेश निम्नलिखित हैं —

"तुम गरीब धन्य हो, क्योंकि ईश्वर का राज्य तुम्हारा है। अभी जो तुम भूखे हो सो धन्य हो क्योंकि तुम संतुष्ट होगे। तुम रोनेवाले धन्य हो जो हँसोगे। (Blessed are you, who are poor, for the kingdom of God is yours Blessed are you who are hungry now, for you will be satisfied Blessed are you who weep, for you will laugh)

और भी उसने कहा —

'अफसोस उनके लिए है, जिनके पास खाने को अधिक हैं, क्योंकि वे भूखे रहेंगे। शोचनीय वे है जो धनी है क्योंकि उनके सुख का समय बीत गया और शोचनीय वे है जो अभी हँसते है, क्योंकि उन्हें रोना पड़ेगा।"

लोगों को उसने सिखलाया —

'सम्पदा में विश्वास करनेवाले पुरुषों का ईश्वर के राज्य में प्रवेश होना बड़ा ही कठिन है। सूई के छेद में ऊँट का प्रवेश होना बड़ा सरल काम है। सूई के छेद में ऊट का प्रवेश करना ईश्वर के राज्य में धनिकों के प्रवेश पाने से कहीं अधिक सुगम है।"

इस प्रकार ईसा ने अपने पीयूषवर्षी उपदेशों से असहायों, दलितों एवं गरीबों को सान्त्वना दी। उसने लोगों को कभी भी विद्रोह करना नहीं सिखलाया। गुलामों के लिए उसने धर्म का द्वार खोल दिया। उसने उपदेश दिया —

"अपने दुश्मनों को प्यार करो, जो तुमसे घृणा करते हैं उनसे तुम नम्रता का बर्ताव करो। जो तुम्हें अभिशाप देते है उन्हें तुम वरदान दो और जो

तुम्हें गाली देते हैं उनके लिए दुआयें करो। जो मनुष्य तुम्हारे एक गाल पर मार उसके सामने अपना दूसरा गाल भी पसार दो और जो मनुष्य तुम्हारा कोट छीन ले उसे अपनी कमीज भी दे दो। जो तुम्हें प्यार करते हैं तो इसमें क्या खूबी है। नास्तिक व्यक्ति भी अपने प्यार करनेवालों को प्यार करता है, इसलिये अपने शत्रुओं को प्यार करो और इन्हें सहायता दो। कभी निराश मत होवो तुम्हें इसका पूरा पुरस्कार प्राप्त होगा।

"ईश्वर गरीबों का है और वह उसी को प्यार करता है। ईश्वर धन और पद देखकर पक्षपात नहीं करता। वह तो प्रेम का भूखा है।'

ईसा ने सभी प्रकार से गरीबों और गुलामों का पक्ष लिया। ईसा ने एक नारा में सिखलाया कि मानव एक दूसरे की सेवा कर और ऐसा करने से ही ईश्वर की सेवा हो सकती है। ईसाई धर्म की यह विशिष्टता है कि धर्म का सचालन करने के लिए पुरोहितों की आवश्यकता है। इसमें प्रत्येक मनुष्य ईश्वर से सीधा सम्पर्क रखता था। जिसमें पूजा पाठ और विधि निषेधों का स्थान नहीं था। यह एक ईश्वर में विश्वास करता था।

ईसा के मरने के उपरान्त सेंट पाल ने इस धर्म का त्वरित गति से प्रचार किया। धर्म प्रचार के लिए उसने कुछ भी उठा नहीं रखा। धर्म के समक्ष उसने अपने व्यक्तिगत जीवन को कभी भी महत्त्व नहीं दिया। सेण्ट पाल ने ईसाई धर्म की व्याख्या इस प्रकार की कि इसमें सभी धर्मों का सार आ गया। उसने नारियों का आदर करने की शिक्षा दी और दासों के हृदय में नूतन आशा का सचार किया।

ईसाई धर्म के प्रति रोमन साम्राज्य की नीति —जिस समय ईसाई धर्म का उदय हुआ था उस समय रोमन साम्राज्य में सम्राट पूजा बड़े जोर शोर से चल चुकी थी। ईसाई केवल ईश्वर को ही मानते थे। भला वे सम्राट को देवता के रूप में कैसे मान सकते थे? सम्राट के समक्ष तो नतमस्तक होना दूर की बात रही। वह भी मूर्ति के रूप में। अतः ईसाईयों के इस आचरण से रोमन अधिकारी अत्यन्त क्षुब्ध हो गए। अब इस धर्म को कुचलने के लिए बार-बार प्रयत्न किया जाने लगा। एक बार २४८ ई० में रोम की स्थापना का वार्षिकोत्सव हो रहा था। इस उत्सव में ईसाईयों ने सम्मिलित होने से अस्वीकार कर दिया। क्योंकि इसमें रोमन देवताओं की पूजा करनी पड़ती थी। फलतः सहस्रों ईसाई फाँसी के फन्दे पर झुला दिए गए। रोमन साम्राज्य डायोक्लेशियन के शासन-काल में उनपर अत्यधिक क्रूरतापूर्ण अत्याचार किए गए। ईसाई धर्मावलम्बियों की सम्पत्ति जब्त कर ली गई।

उनकी पावन पुस्तक बाइबिल एवं अन्य धार्मिक पुस्तकें अग्नि को अर्पित कर दी गईं। उनके लिए न्यायालयों का द्वार बन्द कर दिया गया और ईसाई धर्म लौह प्राचीर में बन्द बन्दी की भाँति कराहने लगा। इन बेपनाह अन्याचारों के पश्चात भी इसकी प्रगति निरन्तर बढ़ती गई। इस दमन ने आग में घी का काम किया। शहीदों की शहादत ने चर्च की स्थापना की। अब उच्च वर्ग के लोग भी इस धर्म के अनुयायी होने लगे। ३२४ ई० में ईसाईयों के मित्र महान कौन्स्टेनटाईन ने इस धर्म को राज्य धर्म की स्वीकृति प्रदान की। ईसाईयों को सम्पत्ति लौटा दी गई और इनपर से कानूनी असुविधायें हटा दी। अब ईसाई धर्म का स्वरूप ही परिवर्तित हो गया, जबतक इसका दमन होता रहा जबतक सच्चे लोग ही इस धर्म को स्वीकार करते थे। किन्तु राज्य का समर्थन प्राप्त होने से इसमें अवांछित व्यक्ति भी आने लगे। रोम ईसाई धर्म का सर्वप्रमुख केन्द्र बना, क्योंकि साम्राज्य की राजधानी थी। वहाँ का पादरी जो पोप कहलाता था, कैथोलिक संसार का धर्मगुरु बना।

इस प्रकार अनेक विघ्न-बाधाओं और कष्ट कटकों की राहों से गुजरता हुआ ईसाई धर्म एक दिन राज्य धर्म बन गया। आज भी विश्व में ईसाई धर्म माननेवालों की संख्या सबसे अधिक है। इसका कारण यह है कि इसके नियम बहुत ही सरल एवं सीधे सादे हैं।

शिक्षायें :—एक ईश्वर में विश्वास करो। एकनिष्ठ एवं दृढ़ विश्वासी बनो। सबके प्रति सदा सच्चा एवं ईमानदार बनो। दुःख और सुख में सदा मुस्कुराते रहो। कष्ट एवं तकलीफों के क्षण में सबका साथ दो। किसी एक लक्ष्य लेकर आगे बढ़ो। अतीत से प्रेरणा ग्रहण करो और उसे अपने जीवन में उतारने की चेष्टा करो।

प्रश्न

(१) ईसा के जन्म के पूर्व क्या अवस्था था ?
(२) ईसा का जीवन-वृत्त अपने शब्दों में लिखो ?
(३) उनके प्रमुख उद्देश्य कौन-कौन थे।
(४) इस धर्म का प्रचार कैसे हुआ और इसके प्रति रोमन साम्राज्य की कैसी नीति रही ?
(५) ईसा के जीवन वृत्त एवं ईसाई धर्म से आपको कौन-कौन सी शिक्षायें प्राप्त हुए ? आपके जीवन का कौन सा लक्ष्य है और इन शिक्षाओं में से किन किन शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारने की चेष्टा की है ?

चैत्र शुक्ल रामनवमी

पूर्व तैयारी—त्यौहार के दिन आने से पूर्व सबको सूचना दे देनी चाहिए कि हम लोग रामनवमी का पर्व मनायेंगे। यदि आस पास के गाँव में मठ हो या राम का मन्दिर आदि हो तो वहीं पर पहुँचकर ग्रामीणों के साथ रामनवमी का पर्व मनाना चाहिए। वहाँ के ग्रामीणों से यह पता लगा लेना चाहिए कि वहाँ पर लोग अर्थ-संग्रह भी कर रहे हैं? यदि कर रहे हैं तो विद्यालय से भी कुछ आर्थिक सहायता कर देनी चाहिए। दूसरे दिन छात्र स्वयं निश्चित विद्यालय की सफाई करके मन्दिर में पहुँचेंगे वहाँ की सफाई करेंगे और वहीं पर सूत्र-यज्ञ करेंगे। पुनः राम की कथा चर्चा होगी उनके विषय में कविताएँ और छन्द पढ़े जायेंगे। अन्त में रामायण पाठ होगा। रामायण पाठोपरान्त प्रसाद वितरण होगा और छात्र पुनः निज निज गृह लौट जायेंगे।

कथा—बहुत पुराने समय में इक्ष्वाकु वंश में दशरथ नाम के राजा अयोध्या में राज्य करते थे। उनकी तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, कैकेई और सुमित्रा। किन्तु सबसे खेद की बात यह थी कि उन्हें कोई भी संतान नहीं थी। अतः ऋषियों ने कहा कि आप यज्ञ करें। राजा दशरथ ने एतदर्थ वशिष्ठ को आज्ञा दी। वशिष्ठ ऋषि ने शृंगी ऋषि को यज्ञ करने के लिए बुलाया। यज्ञ प्रारम्भ हुआ। उस यज्ञ में खीर बनी। उस खीर को दो भागों में बाँटकर कौशल्या और कैकेई को दे दिया गया। कौशल्या और कैकेई ने अपने-अपने हिस्से से थोड़ी थोड़ी खीर निकालकर सुमित्रा को भी दे दी, अतः कौशल्या को एक पुत्र राम और कैकेई को एक पुत्र भरत तथा सुमित्रा को दो पुत्र लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न हुए। राम का जन्म चैत्र शुक्ल नवमी दिन सोमवार को हुआ था। चारों भाई क्रमशः बढ़ने लगे। इसी समय विश्वामित्र मुनि राम की बहादुरी को सुनकर दशरथ के पास दो भाइयों को कुछ दिनों के लिए लेने आए। क्योंकि जंगल में तपस्या करने में बाधक थे। राम और लक्ष्मण सारे राक्षसों को मारकर उनके यज्ञ को निर्विघ्न कर दिया। विश्वामित्र मुनि उन्हें परिभ्रमण के लिए जनकपुर ले गए। इसी समय सीता का स्वयंवर हो रहा था। देश विदेश के भूपति उस स्वयंवर में आये थे। किन्तु उसमें एक शिव धनुष रखा हुआ था। उसे चढ़ाना था। किन्तु सभी राजा हार गये किसी से कुछ न हो सका यहाँ तक कि सभी राजाओं ने एक साथ

उठाने की कोशिश की किन्तु व्यर्थ। "भूप सहस दस एकहि बारा, लगे उठावन टरे न टारा।" तब जनक जी उदास होकर बोले—

वीर विहीन मही मैं जाना।

अब लक्ष्मण का क्रोध भभक उठा। राम ने उन्हें शान्त कर धनुष तोड़ा और सीता से शादी कर धूमधाम से अयोध्या लौटे। राजा दशरथ अब बूढ़े हो चले थे। उन्होंने सोचा कि राम को अब मैं गद्दी दे स्वयं वन में जाकर तपस्या करूँ। ऐसा सोचकर उन्होंने एक सभा बुलाई जिसमें राम को युवराज बनाने और तदन्तर उन्हें सिंहासनारूढ़ करने की बात की। इसी समय उन्हें खबर लगी कि कैकेई कोप भवन में है। वे वहाँ पर घबड़ाये हुए आए। कैकेई को उन्होंने देवासुर संग्राम के समय दो वर माँगने के लिए कहा था। कैकेई ने कहा कि मैं अवसर आने पर माँग लूँगी। इस समय अवसर देखकर उसने वर माँगने की आज्ञा माँगी। उसने माँगा कि राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत को राजगद्दी दें। यह वचन सुनते ही उनके पैरों तले की मिट्टी खिसकने लगी। कठोर वज्रपात हुआ। उन्होंने समझ रखा था कि—

"जानत नेहु कि माँगि चबेना"

किन्तु वे तो थे कि 'प्राण जाइ बरु वचन न जाई।" राम वन गये और राम के वियोग में इधर दशरथ के प्राण पखेरू उड़ गए। अयोध्या की जनता राम के रथ के पीछे चिल्लाती हुई दौड़ी। 'सुमन्त रथ रोको, सुमन्त रथ रोको।' इस समय भरत ननिहाल में थे। वशिष्ठ ने उन्हें दशरथ के मृत्योपरान्त बुलाया और यहाँ आने पर उन्हें सारा सम्वाद सुनाया। किन्तु यहाँ पर कुछ दूसरा ही समा बँधा हुआ था। यहाँ की जनता में न तो कोई सम्मान था और न दिल में कोई अरमान। सारी जनता विह्वल थी राम के शोक में। भरत अयोध्या की जनता के साथ राम को पुनः जंगल से वापस लाने के लिए चल पड़े। चित्रकूट में दोनों भाइयों में मुलाकात हुई। भरत और अयोध्या की जनता की कातर वाणी को सुनकर भी राम नहीं लौटे। वे तो पृथ्वी पर इसीलिए अवतीर्ण हुए थे कि पृथ्वी के पापियों के अत्याचारों से लोगों का निवारण दिलाना था उन्हें। अन्त में भरत राम की खड़ाऊँ लेकर अयोध्या लौट गए। और अयोध्या के समीप के वन में निवास करने लगे। खड़ाऊँ को सिंहासन पर रख राम की प्रतिमूर्ति के रूप में उनकी पूजा करते हुए राज्य संचालन करते रहे।

राम जंगल में एक दिन एक स्वर्ण मृग के पीछे उसका वध करने के लिए दौड़े किन्तु वह तो था मायावी मृग। कुछ दूर जाने पर वह गायब हो

गया। इधर राम के नहीं लौटने पर सीता अति व्याकुल हुई। उन्होंने लक्ष्मण को राम को खोजने के लिए भेजा। लक्ष्मण को नारी हृदय पर विश्वास नहीं हुआ अतः उन्होंने झोपड़ी के चारों ओर एक लकीर खींच दी और इसके बाहर जाने से निषेध कर दिया। इसी समय लंकाधिपति रावण को सुअवसर प्राप्त हुआ और भिखारी का भेष धारण कर सीता को चुराने के निमित्त भिक्षा लेने आया। सीता खींची लकीर के भीतर से ही भिक्षा देने लगी। किन्तु रावण जो भिखारी था कहा कि मैं रेखा के भीतर से भिक्षा नहीं लूँगा। ज्योंही सीता रेखा से बाहर आई। रावण सीता को चुराकर लंका ले गया। बीच में जटायु जो राम का परम भक्त था, रावण से लड़ पड़ा किन्तु रावण ने उसका एक पंख काट दिया। जब राम अपनी कुटिया में लौटे तो सीता को न देखकर विचलित हुए। सर्वत्र उन्होंने सीता की खोज की। यहाँ तक की वन के पेड़-पौधों से भी पूछते चलते हैं खग मृग हे मधुकर श्रेणी, तुम देखी सीता मृगनयनी

मार्ग में घायल जटायु से भेंट हुई। उसने सारा विवरण कह सुनाया। अब राम का क्रोध भड़क उठा। मार्ग में उन्होंने किष्किंधा पर बालि का वध किया और सुग्रीव से मैत्री कर बन्दरों की सेना जुटाई और इस सेना को लेकर लंका पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान किया। सेतु बाँध रामेश्वरम में उन्होंने शिव पूजा की और इसके बाद समुद्र पर पुल बाँध सेनासहित लंका पर उतर गए। इस प्रकार वहाँ के अत्याचारी राजा रावण को युद्ध में मारकर भारत की लक्ष्मी को अयोध्या ले आए और पृथ्वी को उसके भीषण दमन-चक्र से मुक्ति दिलाई। वहाँ के राज्य को उसके भाई विभीषण को सौंप दिया। अयोध्या में खूब आनन्द मनाया गया और खूब धूमधाम के साथ उनका राज्याभिषेक किया गया। इस प्रकार उन्होंने गुरुतर लोक-कल्याण का काम किया। आज हमलोग उन्हीं की यादगारी में उनकी जन्म तिथि मनाते हैं।

शिक्षाएँ—राम की तरह पितृ-मातृ भक्त एवं देशभक्त होना चाहिए। राम की तरह भ्रातृप्रेम रखना चाहिए। हम सभी को इस जनराज्य को राम राज्य में बदलने के लिए राम बनना चाहिए। भरत और राम के बीच राज्य गेंद की तरह लुढ़क रहा था। इससे हम असंग्रह तथा निर्लोभ की शिक्षा ग्रहण करते हैं। सीता के पातिव्रत से और राम के पत्नीव्रत से प्रेरणा लेनी चाहिए। राम के पुरुषार्थ और कष्ट-सहिष्णु जीवन से भी प्रेरणा प्राप्त होती है। अपने वचन का पालन सदा करना चाहिए। सीता ऐसी लक्ष्मी

को प्राप्त करने के लिए जनक ऐसे विदेह (स्थितिप्रज्ञ) को भी हल उठाकर कर्मठ बनना पड़ा। इससे कर्म तथा ज्ञान का समन्वय करने की प्रेरणा होती है।

प्रश्न

१ तुलसी ने राम-कथा को भाषा में बाँधकर हिन्दी साहित्य के साथ-साथ देश का बहुत बड़ा कल्याण किया तथा उद्भ्रान्त तथा ह्रास हिन्दू जनता के मानस में बल का संचार किया। कैसे? विवेचना करें।

२ तुलसीदास जी ने राम की कथा का आलम्बन कबीर के निर्गुणवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप ग्रहण किया, इसकी व्याख्या करें।

राम के जीवन से जो शिक्षायें प्राप्त होती हैं, उसे लेखबद्ध करें तथा दिखलायें कि राम ने सदा मर्यादा की रक्षा की है और इसीलिए उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं?

भारत के मानचित्र प्रदर्शित कर राम की वनयात्रा को अयोध्या से लंका तक के मार्ग को दिखलाएं।



चैत्रशुक्ल १३—महावीर जयन्ती

पूर्व तयारी —स्कूल बन्द होने के पूर्व सभी छात्रों एवं शिक्षकों को सूचित कर दिया जायगा कि अमुक दिन महावीर जयन्ती है। उस दिन सूत्र पूजा परान्त सभी छात्र तथा अध्यापक सम्मिलित होंगे और यहीं पर महावीर के सम्बन्ध में चर्चाएँ चलेंगी। लोग उनके विषय में तर्क वितर्क करेंगे। कविताएँ पढ़ेंगे निबन्ध पढ़ेंगे। गोष्ठी समाप्त होने के उपरान्त उन सभी निबन्धों एवं कविताओं को सकलित कर एवं सब निबन्धों के आधार पर संक्षेप में उनकी जीवनी लिखकर सजिल्द करवा देंगे और उसे प्रधानाध्यापक के कक्ष में या पुस्तकालय में रख देंगे। इससे हमें आगे सहायता मिल सकेगी तथा आगामी वर्ष में महावीर-जयन्ती मनाने के उपरान्त हम तुलना करेंगे कि उनके सम्बन्ध में कितनी खोज हुई है या कम। इससे अपनी प्रगति अथवा का ज्ञान मिल जायगा।

जन्म स्थान का भौलिक परिचय —भगवान महावीर का जन्म गणतन्त्र वैशाली के एक शाखा नगर कुण्ड ग्राम के नायक राजा सिद्धार्थ के यहाँ हुआ था। उस समय कुण्ड ग्राम नामक दो ग्राम का वर्तमान नाम वसुकुण्ड है और वैशाली का बनियावसाढ। ब्राह्मणों का जहाँ निवास स्थान था वह ब्राह्मण कुण्डपुर एवं जहाँ क्षत्रियों का निवास स्थान था वहाँ क्षत्रियों का कुण्डपुर कहलाता था। ये दोनों ही नगर जैन धर्म के अनुयायी थे।

आजकल वैशाली का नाम बनिया वसाढ है। यह बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले में है यह तुर्की स्टेशन से छः मील और मुजफ्फरपुर से १४ मील की दूरी पर है। यहाँ पर प्राचीन काल के कुछ प्रतीक भग्नावशेष के रूप में मिलते हैं। यहाँ की मुख्य फसल धान है किन्तु अच्छी फसल नहीं होती है।

महावीर के समय में विश्व भर में धार्मिक आंदोलन हो रहे थे। चीन में लाओजे और कन्फ्यूसीअस और ईरान में जोरथुस्त नाम के व्यक्तियों के नेतृत्व में धार्मिक आन्दोलन चल रहे थे। तभी भारत में भी एक धार्मिक आन्दोलन का जन्म हुआ। भारत में धार्मिक आन्दोलन के दो स्रोत फूटे। दोनों स्रोतों के उद्गम स्थानों से वेद विरोधी चिन्तकों ने इस क्षेत्र में अपनी प्रौढ़ क्रांति के

बीज डाले। क्षत्र शीघ्र लहलहा उठे। मुख्यत दो चिन्तक थे वद्धमान महावीर और गौतम बुद्ध।

यज्ञो का खर्च इतना बढ गया था कि साधारण लोगो के लिए यज्ञ कराना दुभर प्रतीत होता जा रहा था। इन यज्ञो मे निरीह, निर्बल और निर्दोष पशुओ की बलि चढाई जाती थी। वे तो यह समझते थे कि "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।"

जन्म काल की धार्मिक अवस्था —भगवान महावीर का जिस युग मे जन्म हुआ था उस समय का समाज सामाजिक आडम्बरो, रूढियो, अन्ध विश्वासो अन्धानुकरणो स भरा हुआ था। समाज का पतन हो रहा था। वेदो और उपनिषदो के आदर्शों को कण्ठाग्र कर लेने म ही लोग अपने जीवन की साथकता समझते थे। और उन्होने इसी म ही अपना चरम विकास मान लिया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वश्य अपने को 'द्विज' की उपाधि से आभूषित कर शूद्रो और स्त्रियो के साथ बडा ही अनुचित व्यवहार कर रहे थे। इन कठोर और अमानुषिक अत्याचारो का समाज पर बडा ही गहरा प्रभाव पड रहा था। लोगो म भाइचारे की भावना का सर्वथा अभाव था। एक दूसरे के साथ सदा कटु व्यवहार कर रहे थे। समाज के लोगो म मिलन की भावना नही थी, अत समाज दिनोदिन पतन के गत म गिरा जा रहा था।

जन्म काल की राजनतिक अवस्था —जिस समय महावीर का जन्म हुआ था उस समय वैशाली म गणतन्त्र के सूय की रोशनी छिटक रही थी। गगा के उत्तर तट म वैशाली का गणतन्त्र राज्य था और दक्षिण म मगध साम्राज्य का विस्तार हो रहा था। कौशल और काशी, व्रज और अस्मक जन पदादि मगध के सामने घुटन टेक रहे थ। किन्तु वशाली का भाग्योदय हो रहा था। वशाली क गणतन्त्र राज्य म अमनचैन की वर्षा हो रही थी। घी दूध की नदिया बह रही थी। सोने के दिन थ, चाँदी की रातें थी। वैशाली के गणतन्त्र राज्य की दुग्ध धवल चाँदनी म लोग सुख की नीद सो रहे थे। इसी वशाली म महावीर का जन्म हुआ था।

जीवन-परिचय —आज से ढाइ हजार वर्ष पूर्व जन धर्म के चौबीसवें तीर्थकर भगवान महावीर का जन्म ईसा के ५९० वर्ष पूर्व वैशाली क समीप कुण्ड ग्राम मे हुआ था। आजकल कुण्डग्राम का वर्तमान नाम वसुकुण्ड है और वसाली का बनिया बसाढ। महावीर के पिता सिद्धार्थ कुण्डग्राम क नायक राजा थे। उनकी माता त्रिशला लिच्छवियो के प्रतिनिधि राजा "चटक"

की भगनी थी। व क्षत्रिय कुल म उत्पन्न हुए थे। बचपन म इनका नाम वद्ध मान था।

अपन माता पिता क देहात के बाद भगवान महावीर ने ३० वष की उम्र म अपन बड भाई नन्दी वद्धन स आज्ञा प्राप्त कर श्रमण धम ग्रहण किया। बारह वर्षो की कठोर और कष्ट साध्य तपस्या एव अनवरत चेष्टा के उपरान्त उन्होन भ्राम्भीय नामक गाव क बाहर ऋजुपालिका नदी क उत्तरी तट पर कवल्य अथात् मो र प्राप्त किया। उस समय स व अहन अर्थात पूज्य, जिन अथात् विजता, निग्र थ बधन मुक्त एव महावीर कहलान लग। इस समय स लगभग ३० वषा तक महावीर निरन्तर मगध अग मिथिला और कौशल म अपना धम प्रचार करत रहे। व सब प्रकार स निग्र थ थे। समाज के बन्धना तक का उन्होन विचार नहीं किया। और वस्त्रा को शृंखला मानकर उनका परित्याग कर दिया। व सन्त सवत्र नग्न फिरत रहे। बहत्तर वष की अवस्था तक अपने उपदश का प्रचार करत हुए महावीर न लगभग ईसा से पूव ५०० वर्ष म अपना शरीर त्याग किया।

भगवान महावीर न वदिक कमकाण्डा की उपयोगिता और ईश्वर को नहीं बताया है। आत्मा देह रूप है या देह से भिन्न है? परलोक क्या है? निर्वाण क्या है? य सब समस्यायें बिना आत्म चिन्तन क नहीं सुलझायी जा सकती। उन्होंने बताया—वत्थु स्वभावो धम्मो। अथात् जिस वस्तु का जो स्वभाव रूप है उसका उसी रूप म पूणरूपण स्थिर हो जाना ही उसका धम है। भगवान श्री कृष्ण न गीता म भी इसी बात को 'श्रेयान स्वधर्मे निधन' की उक्ति स कहा है।

भगवान महावीर क विचार से शुद्ध जीव को बधन नहीं होता। जिस जीव म राग-द्वेष है अथात् जो धम स च्युत है उसी जीव म बधन है। उन्होंन कहा कि यह मनुष्य लोक ताल है। जीवों के अच्छे बुरे कम जल हैं। काम योग कीचड है मनुष्य समान कमल है। वीतराग भिक्षु ही धम है। धम तीर्थ जल का किनारा है। कमल का उखर हस्तगत हो जाना ही निर्वाण है।"

जन जीवन का ध्येय पार्थिव अस्तित्व क पाशों स मुक्ति पाना है। जीवों को उनके शारीरी होन के कारण कार्मिक है। कम मुक्ति क, तीन प्रमुख साधन हैं—सम्यक श्रद्धा, सम्यक ज्ञान और सम्यक चरण। महावीर ने इसम आजीवन ब्रह्मचय भी जोड़ दिया है। उन्होंने कहा है कि मनुष्य जबतक

काया है तबतक वह लौकिक कर्मकाण्ड के पाश में बंधा हुआ है। अतः उसे आजन्म ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण करना चाहिए तभी उसे मुक्ति मिल सकती है। उन्होंने तप के महत्व पर अधिक जोर दिया है साथ ही साथ उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह पर भी विशेष जोर दिया है। कायिक यातना और यौगिक क्रियाओं को वे बड़ा महत्व देते थे। यज्ञ एवं उसमें दी जाने वाली बलि को उन्होंने बहुत ही भला बुरा कहा है। यज्ञ को उन्होंने घोर हिंसा का साधन माना और उनके विरुद्ध अपनी जोरदार आवाज उठाई।

भगवान महावीर के उपदेश अत्यंत सरल भाषा में होते थे। लोगों को उनके उपदेशों को समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती थी और सरल भाषा होने के कारण ही लोगों ने उनके जीवन दर्शन की गंभीरता को बड़ी सरलता से समझ लिया और उसी सरलतापूर्ण दर्शन गम्भीरता ने आज उन्हें भारत के अन्यतम ज्योतिधर महापुरुषों में सम्मान से सुशोभित किया है और हम उनके जीवन दर्शन से अनवरत, प्रभावित और पुलकित हो रहे हैं।

शिक्षाएँ —सदा सत्य बोलना चाहिए। हिंसा नहीं करनी चाहिए। निर्बल एवं निरीह प्राणियों को नहीं सताना चाहिए। ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इससे वीर्य की पुष्टि होती है और चेहरे पर कांति एवं रौनक आती है। देशाटन कर ज्ञानार्जन करना चाहिए। देशाटन ज्ञानार्जन का सर्वश्रेष्ठ साधन है। चोरी नहीं करनी चाहिए। धन का अनिर संग्रह नहीं करना चाहिए।

प्रश्न

१ महावीर के जन्मकाल के धार्मिक अवस्थाओं का उल्लेख करें।
महावीर के जन्मकाल की राजनैतिक अवस्थाओं का वर्णन करें।
महावीर का संक्षिप्त जीवन वृत्त प्रस्तुत करें। उनकी शिक्षाएं क्या हैं? उन्हें ज्ञान कहाँ प्राप्त हुआ था? और कितने वर्षों तक उन्होंने धर्म-प्रचार किया?
४ महावीर के विचारों से बुद्ध और गांधी के विचारों की तुलना करें।
५ जैनधर्म अभी तक भारत में प्रचलित है किन्तु बौद्धधर्म का नामोनिशान मिट गया क्यों? सकारण उत्तर दें?

वैशाख शुक्ल ३—अक्षय तृतीया

वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को अक्षय तृतीया कहते हैं। इसी दिन से लोग सतयुग का प्रारम्भ मानते हैं।

पूर्व तयारी—एक दिन पूर्व सभी छात्रों एवं शिक्षकों को इसके विषयार्थ सूचना दे देंगे। दूसरे दिन स्नान कर श्री लक्ष्मी नारायण का दर्शन एवं पूजन करना चाहिए। जल से भरा मिट्टी का बर्तन, पंखा जौ का सत्तू, पानी दही, और बेल तथा आम का दान करना चाहिए। २४ घंटे में एकबार फलाहार करना चाहिए। स्कूल के हेड पंडित जी छात्रों और शिक्षकों की एक गोष्ठी बुलाकर, उसमें इसकी कथा सुनायेंगे और इसका महात्म्य बतलायेंगे।

कथा—राजा युधिष्ठिर के पूछने पर श्री कृष्ण जी ने इसका माहात्म्य इस प्रकार बतलाया था—

पुराने जमाने में किसी गाँव में एक गरीब बनियाँ रहता था वह सदा सत्य बोलता था एवं देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करता था। उसका परिवार बहुत बड़ा था अतः वह सदा चिंतित रहा करता था। एक दिन उसने कहीं पर अक्षय तृतीया का महात्म्य सुना। उस माहात्म्य को सुनकर उसके हृदय में यह उत्कंठा जगी कि मैं भी इस व्रत को करूँ, उसने व्रत किया और यथाशक्ति दान भी दिया। ऐसा कहा जाता है कि मृत्यु के उपरांत व्रत के प्रभाव से उसका जन्म कुशावाहा पूर्व में राजा के घर में हुआ। तभी से अक्षय तृतीया व्रत की परम्परा चली आ रही है।

शिक्षाएँ—लक्ष्मी नारायण का दर्शन और पूजन करने से हृदय शुद्ध, निर्मल, कोमल एवं निर्विकार हो जाता है और उसमें सद्‌गुणों का विकास होता है। दान करने से गरीबों और दरिद्रों को भोजन मिल जाता है और एक प्रकार से कल्कि भगवान का दर्शन हो जाता है, क्योंकि कल्कि भगवान गरीबों का ही माना गया है। उपवास रहने से पेट साफ हो जाता है और चित्त शुद्ध हो जाता है। काम करने में मन लगता है और शरीर में स्फूर्ति तथा चेहरे में कांति की वृद्धि होती है।

१ अक्षय तृतीया कब मनायी जाती है ? इसका विधान क्या है ?
२ इसको क्या कहा है और किसने कहा है ?
३ इसका क्या महत्त्व है ?
४ क्या अक्षय तृतीया व्रत करना छात्रों के लिए लाभदायक होगा ? यदि होगा तो कैसे ? सकारण उत्तर दें ।

वैशाख शुक्ल ३—परसुराम जयन्ती

परशुराम जी का जन्म अक्षय तृतीया को हुआ था। यह जयन्ती उत्तर भारत में मथुरा और काशी के बीच तथा दक्षिण में परशुराम-क्षेत्र में विशेष रूप से मनाई जाती है।

पूर्व तैयारी—एक दिन पूर्व सभा को इसके विषय में सूचना दे दी जायगी। दूसरे दिन सूत्र-पाठोपरान्त सभी छात्र एवं शिक्षक एक जगह जुटेंगे, वहीं पर विद्यालय के प्रधान पंडित जी या कोई अन्य शिक्षक इसके विषय में चर्चा करेंगे एवं परशुराम जी की जयन्ती एवं उनके कार्यों से परिचय करायेंगे। इसका विधान यह है कि दिन भर व्रत एवं उपवास करें। रात को यदि हो सके तो फलाहार कर और न करें तो वह भी उत्तम होगा। परशुराम जी का पूजन करें और उनकी कथा सुनें।

कथा—प्राचीन काल में जब कि वैदिक युग अस्त हो रहा था भृगु-वंश में यमदग्नि नाम के महातपस्वी मुनि का आविर्भाव हुआ।

भृगु-वंश बड़ा ही प्रतिष्ठित था। शुक्राचार्य भृगु के ही पुत्र थे जो दानवों के गुरु थे और उन्होंने अपनी संजीवनी विद्या से समय समय पर असुरों का बड़ा ही उपकार किया था।

भृगु-वंश में ही महर्षि च्यवन बहुत बड़े तपस्वी पैदा हुए थे। ऐसा कहा जाता है कि राजा शर्याति ने बहुत ही अनुनय विनय के साथ अपनी कन्या को इन्हें दान में दिया था। इन्हीं के वंश में ऋचिक और और्व जैसे ऋषि हुए। गर्भावस्था में ही राजाओं ने और्व की हत्या करने की सोची थी किन्तु प्रयत्न विफल हो गया। १६ वर्ष के सगर राजा को और्व ने ही युद्ध कला में पारंगत बना दिया था। इस प्रकार भृगु-वंश बड़े ही सदाचारी सत्यवादी वीर धीर, निष्काम एवं परोपकारी होते थे। हरि भजन एवं ज्ञान की खोज, तथा सदुपदेश देकर लोक कल्याण करना ही भृगु वंशियों का प्रधान कर्म और धर्म था।

तो यमदग्नि के जन्म लेते ही सारी कुटिया आलोकित होने लगी। जन्म के समय इनके चेहरे की कांति अग्नि के समान थी इसीलिए इनका नाम यमदग्नि पड़ा।

इनकी पत्नी का नाम रेणुका था। रेणुका से वसु मातादि ५ पुत्र उत्पन्न हुए। परशुराम अपने भाइयों में कनिष्ठ थे। ये बचपन से ही